प्राचीन-काव्य-कुसुमाकर

सम्पादक

पंडित बालासहाय शास्त्री
यूनिवर्सिटी-लायब्रेरी, शिमला।

For Mehar Chand Lachhman Das.

प्रकाशक
मेहरचन्द्र लछमणदास
कूचा चेलां, दरियागंज
दिल्ली।

वक्तव्य

काव्य

'रमणीयार्थप्रतिपादक शब्दः काव्यम् ।'

रमणीय अर्थ को प्रतिपादन करने वाला शब्द ही काव्य कहलाता है । रमणीय वह है, जो मन में रमण करे अर्थात् जिसे पढ़कर मनुष्य का हृदय उसी में लीन हो जाय । आनन्द की उत्पादक रमणीयता है, और वह आनन्द अलौकिक है । कविता को छोड़कर और कहीं भी उस आनन्द की उपलब्धि नहीं हो सकती । यों तो प्राणि-मात्र की उत्पत्ति आनन्द से है परन्तु कविता का आनन्द ही कुछ और है । वह निरुपयोगी नहीं, लाभदायक है । उससे मनोभावों में पवित्रता का संचार होता है, धर्म, अर्थ काम, मोक्ष की प्राप्ति होती है । कविता मनोभावों का प्रतिबिम्ब है, जो शब्दों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है । जब तक भावों की प्रेरणा से कोई मानसिक उद्गार नहीं निकलता तब तक हम उसे कविता नहीं कह सकेंगे, चाहे वह पद्य में ही क्यों न कहा व लिखा जाय । गद्य और पद्य तो केवल कविता के आवरण-मात्र हैं, जिनके विषय में एक यही मतभेद हो सकता है कि कौन सुन्दर और उपयोगी है ।

किसी पदार्थ, दृश्य या घटना आदि से उत्पन्न हुए प्रेम, हर्ष, शोक, क्रोध आदि भावों से प्रभावित होकर मनुष्य जो कुछ कहता है, वही कविता है । और वही कविता श्रोताओं के हृदयों को आकर्षित

कर सकती है। कवि की प्रवृत्ति प्रायः उन्हीं विषयों की ओर होती है। जो सुन्दर, सत्य और कल्याणकारी हैं। तभी तो विद्वज्जनों ने कवि की कृति को 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के शब्दों से सम्बोधित किया है। इसमें जहाँ आनन्द का उद्रेक है, वहाँ मनुष्य को उपदेश भी प्राप्त होता है। तभी तो 'गुप्त" जी ने अपनी एक कविता में कहा है—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए॥
क्यों आज रामचरित-मानस सब कहीं सम्मान्य है।
सत्काव्ययुत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है॥

कविता के विषय में तनिक पाश्चात्य विद्वानों की भी सम्मति देखिए, वे क्या कहते हैं? कविवर शैली ने कहा है—

"Poetry preserves from decay the visitations of Divinity in man" अर्थात् कविता मनुष्य में दिव्य भाव की प्रगतियों को निर्बल पड़ने से बचाती है।

कविवर एट्स ने कहा है—"Poetry is the ritual of the marriage of Heaven and Earth" अर्थात् कविता पृथ्वी और स्वर्ग का विवाह-संस्कार है।

कुछ भी हो, हमें यह मानना ही पड़ेगा कि कविता हृदय-रूपी समुद्र से उत्पन्न होने वाले उज्ज्वल तथा अमूल्य मोती हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिए अत्यन्त परिश्रम की आवश्यकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाती शारद कहहिं सुजाना॥
जो बरसइ वर वारि-विचारू। होहि कवित मुक्तामणि चारू॥

अर्थात्—मनुष्य का हृदय समुद्र है और बुद्धि उसमें सीप के सदृश है। सरस्वती स्वाति की बूँद है। जब सरस्वती-रूपी स्वाति की वर्षा होती है और उसकी बूँद हृदय-रूपी समुद्र की बुद्धि-रूपी सीप में पड़ती है, तब कविता-रूपी मोती बनते हैं। यह है वास्तविक कविता का स्वरूप!

कवि कौन ।

कवि सांसारिक सौन्दर्य के मर्म का ज्ञाता है, जिसके द्वारा सृष्टि का सौन्दर्य देखा जाता है। कवि का भोजन ही सौन्दर्य है। जब वह उससे तृप्त हो उन्मादी बनकर कुछ प्रलाप करता है, वही उसकी कविता है। वैज्ञानिक और कवि में महान् अन्तर है। वैज्ञानिक तो मस्तिष्क का सम्राट् है और कवि हृदय का। हृदयहीन मनुष्य कवि हो ही नहीं सकता। वैसे तो हृदय सबके होता है परन्तु यहाँ हृदयहीन का तात्पर्य उन मनुष्यों से है, जो हृदय के मर्म को समझ ही नहीं पाते। हृदय की बातों को समझना और उसको संसार के आगे प्रत्यक्ष रूप में प्रकट करना कवि का ही काम है।

मानव-हृदय में आन्तरिक तथा बाह्य प्रभावों से उत्पन्न हुई नाना प्रकार की वीचिमाला के उत्थान, पतन, सम्मिलन तथा संघर्षण से जो संगीत उत्पन्न होता है उस पर मुग्ध होने वाला एकमात्र कवि ही है। अपने प्रियतम ऋतुराज के आने पर प्रेम में उन्मत्त हुई श्यामा जब आम्रमंजरी से लदी हुई डालियों पर थिरक-थिरककर गाने लगती है तो कवि की हृदय-वीणा स्वयमेव झंकृत हो उठती है—

को कहिहै यह बैरी बसन्त पै, आवत जो बन आग लगावन।
बौरन सों करि डारत बौरी, भरे जिय बैर [illegible] ॥

ह्वै हैं करेजन की किरचैं, 'कवि देव जू' कोकिल बैन सुनावत।
बीर की सौं बलबीर बिना, उड़ि जायगो प्रान अबीर उड़ावत॥

पूर्णचन्द्र का प्रतिविम्ब जब निर्मल जलवाहिनी तरणिसुता की श्यामवर्ण तरंगों में आकर खेल खेलता है तो कवि की आँखें अलौकिक ज्योति से परिपूर्ण हो जाती हैं और वह उनमें नाना प्रकार की कल्पनाओं का चित्र खींचना आरम्भ कर देता है।

'चन्द प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकाओ,
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो।
मनु हरि-दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो;
कै तरंग कर मुकुर पिये शोभित छवि छाओ।
कै रास रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है;
कै जल-उर हरि-मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है॥

श्रावण मास में पावस-दल की घनघोर घटाओं के गर्जन से उल्लसित होकर जब मयूर-गण नाचने लगते हैं तो कवि का मन-मयूर उनसे पूर्व ही नृत्य करना आरम्भ कर देता है—

सेनापति, उनये नये जलद सावन के,
चारिहूँ दिसान घुमरत भरे तोइ के।
सोभा सरसाने न बखाने जात कहुँ भाँति,
आते हैं पहार मानो काजर के ढोइ के॥
घन सों गगन छयो, तिमिर सघन भयो,
देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के।
चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि,
मेरे जान याहि ते रहत हरि सोइ के॥

त्रिविध समीर के झोंकों से झूलते हुए सुमन-गुच्छ के साथ कलोल करती हुई भ्रमरावलि की गुञ्जार को सुनकर कवि का अलि-हृदय भी उसी के साथ गूँजने लगता है और अकस्मात् उसके मुख से निकल पड़ता है—

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।
नागकेसरि को सुअंकन रहसिहि भरत॥
सिरसफूलन कान धरि वनयुवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत॥

तात्पर्य यह है कि कवि के श्रवणों में अलौकिक श्रवण-शक्ति और नेत्रों में अद्भुत ज्योति होती है। तभी तो सांसारिक जन-समुदाय कभी-कभी उन्हें पागल की पदवी देने पर बाध्य हो जाता है। वास्तव में पागल, प्रेमी और कवि की दशा एक-सी ही होती है। तभी तो महाकवि शेक्सपियर ने एक स्थान पर कहा है—

The lunatic, the lover and the poet,
Are of imagination all compact.

अर्थात् पागल, प्रेमी और कवि—इनकी कल्पनाएँ एक-सी होती हैं। अस्तु, महर्षि नारद के शब्दों में कवि की परिभाषा को लिखकर हम अपने इस विषय को समाप्त करते हैं। महर्षि ने 'संगीत-मकरन्द' में लिखा है—

शुचिर्दक्षः शान्तः सुजनविनतः सूनृतपरः
कलावेदी विद्वानतिमृदुपदः काव्यचतुरः।
रसज्ञो दैवज्ञः सरसहृदयः सत्कुलभवः
शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कविः॥

प्रस्तुत संग्रह

कुसुमाकर में हमने उपरोक्त गुणों से युक्त महाकवियों की कविता का संग्रह किया है—कबीर, सूर, तुलसी आदि। यद्यपि संग्रहों की तो साहित्य-संसार में कोई कमी नहीं परन्तु हमने यत्न किया है कि हम इसमें अपने पाठकों को उनके उन नये रत्नों का दिग्दर्शन कराएँ जोकि शायद अभी उनके दृष्टिगोचर न हुए हों।

उपर्युक्त कवियों का वर्णन हमने उनके परिचय में ही यथेष्ट दे दिया है अतः यहाँ और अधिक लिखना केवल पाठकों का समय ही नष्ट करना है। अन्त में अब और विस्तार में न जाते हुए हम केवल इतना ही कहकर अपने वक्तव्य को समाप्त करते हैं कि पाठ्य-पुस्तक होने के कारण हमने अपने इस संग्रह को शृङ्गार-रस से अछूता ही रक्खा है।

बालासहाय शास्त्री

कवियों की सूची

चन्दबरदाई

जीवन-परिचय

महाकवि चन्द का जन्म सन् ११४८ में लाहौर में हुआ था। इस तरह उसे पंजाब का एक श्रेष्ठ महाकवि कहा जा सकता है। कहते हैं कि चन्द और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था। वे दोनों आजीवन घनिष्ठ मित्र रहे और दोनों का देहान्त भी एक ही साथ हुआ।

यह भी प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में चन्द उसके साथ नहीं था। वह उस समय देवी के मन्दिर मे बैठकर काव्य-रचना कर रहा था। युद्ध में पृथ्वीराज हार गया और शहाबुद्दीन ने उसे कैद कर लिया। पृथ्वीराज को ग़ज़नी ले जाया गया। चन्द को जब यह समाचार मिला तब उसने अपना रासो अपने पुत्र जल्ह के सुपुर्द कर दिया और ग़जनी के लिए रवाना हो गया।

चन्द के छप्पय विशेष प्रसिद्ध हैं। 'छप्पय' लिखने में इतनी सफलता अन्य किसी कवि को नहीं मिली। उसमें संयुक्ताक्षरों की अधिकता है और शैली प्राचीन होने के कारण वह दुरूह भी है। चन्द की कविता में उर्दू और फारसी के भी काफी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। पृथ्वीराजरासो की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया जाने लगा है।

पद्मावती-विवाह-कथा

दूहा

पूरब दिस गढ़ गढ़नपति, समुद सिखर अति दुग्ग।
तहँ सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग ॥१॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसॉन बहु साद ॥२॥

कवित्त

धुनि निसॉन बहु साद, नाद सुरपंच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साज तिन ॥
गज असंख गज पतिय, मुहर सेना तिय संखह।
इक नायक कर धरी, पिनाक धर भर रज रक्खह ॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगिनत पदम, सो पदमसेन कूँवर सुघर ॥३॥

दूहा

पदमसेन कूँवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुँ कला ससिभान ॥४॥

कवित्त

मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल वेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय ॥

विगसि कमल मृग भ्रमर, वैंन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब, मोति नखसिख अहिघुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरिहंस गति, विह बनाय संचै सचिय।
पद्मिनिय रूप पद्मावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय॥५॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पछी सब मोहिनी, सुर नर मुनिवर पास॥६॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान।
जानि चतुर दस अंगपट, रति वसन्त परमान॥७॥
सखियन सँग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिष्षय नयन, तब मन भयौ हुलास॥८॥

कवित्त

मन अति भयौ हुलास, विगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सुधर, बिम्ब फल जानि कीर छवि॥
यह चाहत चख चकित, उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ, लियौ तब गहित अप्प कर॥
हरषत आनन्द मन महि हुलस, लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रष्षत भई॥९॥

दूहा

तिही महल रष्पत भइय, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुँट्यो कीर सो, रॉम पढ़ावत फुल्ल॥१०॥
कीर कुंवरि तन निरखि, दिखिनखसिख लौं यह रूप।
करता करी बनाय कै, यह पद्मिनी सरूप॥११॥

कवित्त

कुट्टिल केस सुदेश, पौह्प रचियत पिक्क सद ।
कमल गंध वय संघ, हंस गति चलह मंद मद ॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर, नख स्वाति बुन्द जस ।
भ्रमर भँवहि भुल्लाहि सुभाव, मकरन्द वास रस ॥
नैन निरखि सुख पाय सुक, यह सदिन मूरति रचिय ।
उमा प्रसाद हर हेरियत, मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥१२॥

दूहा

सुक समीप मन कुँवरि को, लग्यौ वचन के हेत ।
अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥१३॥

गाथा

पुच्छत वयन सुवाले, उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये ।
कवन नाम तुम देस, कवन थंद करै परवेश ॥१४॥
उच्चरिय कीर सुनि बयनं, हिन्दवान दिल्ली गढ़ अयनं ।
तहाँ इन्द्र अवतार चहुवांन, तहँ प्रथिराजह सूर सुभारं ॥१५॥

पद्धरी

पदमावतीहि कुँवरि सँघत्त, द्रुज कथा कहत सुनि सुनि सुवत्त ॥१६॥
हिन्दवांन थान उत्तम सुदेस, तहँ उदत द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥१७॥
संभरि नरेस चहुवांन थांन, प्रथिराज तहाँ राजंत भांन ॥१८॥
वैसह वरीस षोड़स नरिंद, आजान वाहु भुअ लोक चंद ॥१९॥
संभरि नरेश सोमेसपूत, देवंत रूप अवतार धूत ॥२०॥
सामंत सूर सव्वै अपार, भूजांन भीम जिम सार भार ॥२१॥

जिहि पकरि साह साहाब लीन, तिहुँ बेर करिय पानीप हीन ॥२२॥
सिगिनि सुसद्द गुन चढ़ि जँजीर, चुक्कै न सबद बेधंत तीर ॥२३॥
बल बैन करन जिम दॉन मान, सत सहस सील हरिचँद समान ॥२४॥
साहस सुकम्म विक्रम जुबीर, दॉनव सुमत्त अवतार धीर ॥२५॥
दिस च्यार जॉनि सब कला भूप, कंद्रप्प जॉनि अवतार रूप ॥२६॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द ।
सहस किरन झलहल कमल, रिति समीप वर विंद ॥२७॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अग ।
तन मन हित चहुवान पर, बस्यौ सुरत्तह रंग ॥२८॥
बेस विती समिता सकल, आगम कियौ बसंत ।
मात पिता चिन्ता भई, सोधि जुगति कौ कंत ॥२९॥

कवित्त

सोधि जुगति कौ कंत, कियौ तब चित्त चहौं दिस ।
लिख्यौ विप्र गुर बोल, दही नमस्काय चाल तस ॥
नर नरिंद नरपति, बड़े गढ़ द्रुग्ग असेसह ।
सीलवन्त उन सुद्ध, देहु कन्या सुनेसह ॥
तब चलन देहु दुज्जह लगन, मधुल वद दिय आप तन ।
आनंद उछाह मन्नह निपट, बज्जन नद सोमंद घन ॥३०॥

दूहा

[illegible] उत्तर नयन, कनउँ गढ़ दुर्ग ।
[illegible] सोमेसंत [illegible] गार ट्रिन्न अभंग ॥३१॥

नारकेलि फल परिठ दुज, चौक पूरी मनि मुत्ति ।
दई जु कन्या वचन वर, अति आनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजंग प्रयात

विहसि वरं लगन लिन्नौ नरिदं, वजी द्वारद्वारं सु आनंद दुंदं ३३
गढंनं गढं पत्तिसव वोलि तुंत्ते, आइयं भूप सव कटुंव सुत्ते ३४
चले दस सहस्सं असव्वार दानं, परं पूरीय पैदलं तेजु थानं ३५
मत्तमदगलितं सै पंच दंनी, मनों सांम पाहार वुग पंति पंती ३
चले अग्गितेजी जुतत्ते तुखारं, चौवरं चौरासी जु साकत्ति भारं ३
कंठ नगं नूप अनोपं सु लालं, रंगं पंच रंगं ढलक्कंत ढालं ३
पंच सुरं सावद्द वाजित्र वाजं, सहस सहनाय स्रग मोहि राज ३
समुद सिर सिखर उच्छाह छाहं, रचित मंडपं तोरनं श्रीयगाहं ४
पदमावती विलखिवर वाल वेली,कही कीर सो वात तव हो अकेली४
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं, वरं चहुवांन जुआनौ नरेसं ४

दूहा

आंनो तुम्ह चहुवान वर अरु कहि इहै सदेस ।
सांस सरीरहि जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

कवित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस, जोग लिखि कग्गर दिन्नौ ।
लगुन वरग रचि सरव, दिन द्वादस ससि लिन्नौ ॥
से अरु ग्यारह तीस, साप संवत परमानह ।
जोपित्री कुल सुद्ध, वरनि वरि रप्पहु प्रानह ॥
दिप्पंत दिट्ठ उच्चरिय, वर इक पलक विलम्ब न करिय ।
अलगार रयन दिन पंच महि, ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यो रुकमनि कन्हर वरी, ज्यों वरि संभरि कांत ।
शिव मँडप पच्छिम दिसा, पूजि समत्र स प्रॉत ॥४५॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ, उड्यौ गगनि गहि चाव ।
जहँ दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जांम मे जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृप राज कर, पुलि वचिय प्रथिराज ।
सुक देखत मन मे हँसे, कियो चलन को साज ॥४७॥

कवित्त

उदै घरी उहि पलनि, उदै दिन वेर उदै सजि ।
सकल सूर सामंत, लिये सव वोलि वंव वजि ॥
अरु कविचंद अनूप, रूप वरस वर कह वहु ।
और सेन सव पच्छ, सहस सेना तिय सष्षहु ॥
चामडराय दिल्ली धरह, गढ़पति करि गढ़ भार दिय ।
अलगार राज प्रथिराज तव, पूरव दिस तव गमन किय ॥४८॥

दूहा

जादिन सिपर वरात गय, तो दिन गय प्रथिराज ।
ताही दिन पतिसाह कौ, भइ गज्जनै अवाज ॥४९॥

कवित्त

सुनि गज्जनै अवाज, चढ्यौ साहावदीन वर ।
खुरासांन सुलतान, कास काविलिय मीर धर ॥
जङ्ग जुरन जालिम जुझार, भुज सार भार भुअ ।
धर धमंकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रेन हुअ ॥

उलटि प्रवाह मानौ सिंधु सर, रुकि राह अड्डौ रहिय।
तिहि घरिया राज प्रथिराजसौं, चंद वचन इह विधि कहिय ॥५०॥

कवित्त

निकट नगर जब जांनि, जाय वर विंद उभय भय।
समुद सिखर घन नद, इंद दुहुँ ओर घोर गय॥
अगिवानिय अगिवान, कुँअर वनि वनि हय सज्जति।
दिष्पन को त्रिय सवनि, चढ़ि गौरव छाजन रज्जति॥
विलखि अवास कुँवरी वदन, मनो राह छाया सुरत।
झंपनि गवष्पि पल पल पलकि, दिखत पंथ दिल्ली सुपति ॥५१॥

पद्धरी

दिष्पंत पंथ दिल्ली दिसांन, सुख भयौ सूक जब मिल्यो आन॥५२॥
संदेश सुनत आनंद नैन, उमगीय बाल मनमथ्य सैन ॥५३॥
तन चिटक चीर डार्‌यो उतारि, मज्जन मयंक नव सत सिंगार ॥५४॥
भूषन मँगाय नखशिख अनूप, सजि सेन मनो मनमथ्य भूप ॥५५॥
सोव्रन्न थार मोतिन भराय, झलहल करंत दीपक जराय ॥५६॥
संगह सखिय लिय सहस बाल, रुकमिनिय जेम लज्जत मराल ॥५७॥
पूजिय गवरि संकर मनाय, दच्छिनै अङ्ग करि लगिय पाय ॥५८॥
फिर देसि देखि प्रथिराजराज, हँस्न मुद्ध सुद्ध कर पट्ट लाज ॥५९॥
कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय, लै चल्यौ नृपति दिल्ली सुराय ॥६०॥
भई खबरि नगर बाहिर सुनाय, पद्मावतीय हरि लीय जाय ॥६१॥
वाजी सुवंब हय गय पलान, दौरे सुतब्बि दिस्सह दिसान ॥६२॥
सुम लेहु लेहु मुग्व जंपि जोध, हुसाद सूर मन धरि सोध ॥६३॥

अग्गे जु राज प्रथिराज भूप, पच्छै सुभयो सब सेन रूप ॥६४॥
पहुँचे सुजाय तत्ते तुरंग, मुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग ॥६५॥
उलटी जु राज प्रथिराज वाग, थकि सूर गगन धर धसत नाग॥६६॥
सामंत सूर सब काल रूप, गहि लोह छोह वाहै सु भूप ॥६७॥
कम्मान वॉन छुट्टहिं अपार, लागंत लेहि इम सारि धार ॥६८॥
घमसान घान सब वीर खेत, घन श्रोन वहत अरु रुकत रेत ॥६९॥
मारे वरात के जोध जोह, परि रुंड मुंड अरि खेत सोह ॥७०॥

दूहा

परे रहत रिन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख।
जीति चल्यौ प्रिथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ॥७१॥
पदमावति इस लै चल्यौ, हरिख राज प्रथिराज।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ॥७२॥

कवित्त

भई जु आनि अवाज, आय साहाब दीन सुर।
आज गहौं प्रथिराज, बोल वुल्लंत गजत धुर॥
क्रोध जोध जोधा अनंत, करिय पंती अनि गज्जिय।
बान नालि हथनालि, तुपक तीरह स्रब सज्जिय॥
पवै पहार मनो मार के, भिरि भुजान गजनेस बल।
आये हंकारि हंकारि करि, खुरसान सुलतान दल ॥७३॥

भुजंगप्रयात

खुरासान मुल्तान खंधार मीरं, बलख स्यो बलं तेग अच्चूक तीरं ॥७४॥
रुहंगी फिरंगी हलब्बी समानी, ठटी ठट्ट बलोच ढाल निमानी ॥७५॥

मॅजारी चखो मुक्ख लम्बक लारी, हजारी हजारी इक्कै जोध भारी ७६
तिनं पप्परं पीठ हय जीन सालं, फिरंगी कती पास सुकलात लालं ७७
तहाॅ वाघ वाघं मरूरी रिछोरी, घनं सार समूह अरु चौर भोरी ७८
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी, तुरक्की महावांन कम्मांन वाजी ७६
ऐसे असिव असवार अग्गोल गोलं, भिरे भूप जेते सुतत्ते अमोलं ८०
तिनं मद्धि सुलतान साहाव आपं, इसे रूपसों फौज वरनाय जापं ८१
तिनं घेरियं राजप्रथिराजराजं, चिहौ ओर घनघोर नीसांन वाजं ८२

कवित्त

वज्जिय घोर निसाॅन, रान चौहान चहौं दिस।
सकल सूर सामंत, समरि वल जंत्र मंत्र तस॥
उट्ठि राज प्रथिराज, वाग लग मनों वीर नट।
कढ़त तेग मनोवेग, लगत मनो वीज भट्ट घट॥
थकि रहे सूर कौतिक गिगन, रगन मगन भइ श्रोन घर।
हृदि हरपि वीर जग्गे हुलस, हुरेउ रंगि नव रत्त वर॥८३॥

दूहा

हुरेउ रंग नव रंत कर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह जित्त॥८४॥

कवित्त

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर।
धर उप्पर भर परत, करत अति जुद्ध महाभर॥
कहौ कमध कहाॅ मथ, कहौं कर चरन अन्तर्रार।
कहौं कंध वहि तेग, कहौ सिर जुट्टि फुट्टि उर॥

कहौं दंत मंत हय खुर पुपरि, कुम्भ भ्रसुंडहरुएड सव।
हिंदवान रान भय भांन मुख, गहिय तेग चहुवांन जव ॥८५॥

भुजंगप्रयात

गही तेग चहुवान हिंदवांन रानं, गजं जूथ परि कोप केहरि समानं ८६
करे रुएड मुएडं करी कुम्भ फारे, वरं सूर सामंत हुकि गर्ज भारे ८७
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे, मदं तंजियं लाज ऊमंगमग्गे ८८
दौरि गज अंध चहुवांन केरो, घेरीयं गिरदं चिहौ चक्क फेरो ८९
गिरदं उड़ी भांन अंधार रैनं, गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं ९०
सिरं नाय कम्मांन प्रथिराजराजं, पकरियै साहि जिम कुलिंग वाजं ९१
लै चल्यौ सितावी करी फारि फौजं, परें मीर सै पंचतहँ खेत चौजं ९२
रजंपुत्त पचास सुज्झे अमोरं, वजै जीत के नद्द नीसान घोरं ९३

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै संग।
दिल्ली दिसि मारगि लगौ, उतरि घाट गिर गंग ॥९४॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतांन।
निकट नगर दिल्ली गये, प्रथिराज चहुवांन ॥९५॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न, सुभ घरी परिट्ठिय।
हर बांसह मंडप वनाय, करि भांवरि गंठिय॥
ब्रह्म वेद उचरहिं होम चौरी जु प्रत्ति वर।
पद्मावती दुलहिन अनूप, दुल्लह प्रथिराजराज नर॥
डंड्यौ साह साहावदी, अट्ठ सहस हय वर सुवर।
दै दांन मांन पटभेय को चढ़े राज दुग्गा हुजर ॥९६॥

कवित्त

चढ़िय राज प्रथिराज, छाड़ि साहावदीन सुर।
निपत सूर सामंत, वजत निसान गजत धुर॥
चंद्रवदनि मृगनयनि, कलस ले सिर सनमुख जुख।
कनक थार अति वनाय, मोतिन वंधाय सुख॥
मंडल मयंक वर नार सव, आनन्द कंठह गाइयव।
ढोरंत चॅवर किंकर करहिं, मुकट सीस तिक जु दियव॥६७॥

दूहा

चढ़े राज दुगाह नृपति, सुमत राज प्रथिराज।
अति आनन्द आनन्द सैं, हिंदवांन सिरताज॥६८॥

कबीरदास

जीवन-परिचय

जन्म सं० १४५६ काशी में　　　　　मृत्यु सं० १५७५ मगहर में

कबीरदास ज्ञानमार्गी शाखा के सर्वप्रथम एवं प्रतिनिधि-महाकवि हैं। इनके जन्म के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें विधवा ब्राह्मणी की सन्तान मानते हैं तो दूसरे नीरू और नीमा नामक जुलाहा-दम्पति की औरस सन्तान कहते हैं। कुछ भी हो यह तो सर्व-सम्मत है कि इनका पालन-पोषण मुस्लिम परिवार ही में हुआ। अतः इन्हें मुसलमान भक्त-कवि कहने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इनके गुरु श्री स्वामीरामानन्द थे। बचपन से ही यह हिन्दू धर्म से अत्यन्त प्रभावित थे। कभी-कभी तिलक भी लगा लिया करते और राम नाम तो इनका सर्वस्व ही था। किन्तु दूसरी ओर ये हिन्दू और मुसलमानों के भेद-भाव, वैर-विरोध को दूर करने के लिए भी प्रयत्न-शील थे। इन्होंने देखा कि व्रत, पूजा, रोज़ा, नमाज़ आदि बाह्य विधि-विधानों के कारण हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। एक पूर्व में मुँह करके सन्ध्या करता है तो दूसरा पश्चिम की ओर मुँह किये हुए नमाज़ पढ़ता है, इसीलिए कबीर ने दोनों धर्मों के बाहरी विधि-विधानों का कड़े शब्दों में खण्डन किया। एक स्थान पर कहते हैं कि—

पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।
ताते यह चक्की भली, पीस खाय संसार॥

तो दूसरे स्थान पर लिखते हैं कि—

कंकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्लाँ बाँग दे, बहिरा हुआ खुदाय॥

इस प्रकार की खण्डनात्मक उक्तियों से दोनों ही धर्मों वाले कबीर से चिढ़ गये, फलतः वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल न हो सके। फिर भी निम्न वर्ग के लोगों पर उनके उपदेशों का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। आचरण की शुद्धता, अहिंसा, सत्य आदि सद्गुणों के द्वारा मनुष्यों को आत्मोन्नति का मार्ग दिखाकर समाज के उपेक्षित अंग अर्थात् निम्न वर्ग का उन्होंने विशेष उपकार किया। यद्यपि कबीर पढ़े-लिखे न थे फिर भी वे अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुष थे। इनकी उक्तियों में स्थान-स्थान पर रहस्यवाद का अभिव्यञ्जन हुआ है।

कबीर की भाषा सधुक्कड़ी अथवा खिचड़ी है जिसमें व्रज, अवधी, खड़ी बोली, पंजाबी आदि अनेक प्रांतीय भाषाएँ मिली-जुली हैं।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है। इसके तीन भाग हैं—१ रमैणी, २ शब्द, ३ साखी।

कहते हैं कि कबीर की मृत्यु के पश्चात् उनके हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में दाह-संस्कार करने और दफनाने के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया था किन्तु चादर उठाकर देखने पर शव के स्थान पर कुछ फूल मिले। आधे फूलों को हिन्दुओं ने लेकर दाह-संस्कार किया और आधे को लेकर मुसलमानों ने दफना दिया। सम्भवतः कबीर ने स्वयं ही पहले से यह व्यवस्था कर दी थी।

जाको राखै साइयाँ मारि न सक्के कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय॥
ज्ञान-दीप परकास करि भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय॥
लाली मेरे लाल की जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥
साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥
औगुन को तो ना गहै गुन ही को ले बीन।
घट-घट महके मधुप ज्यों परमातम ले चीन॥
भक्ति भेस बहु अन्तरा जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन हरि चरन में भेप जगत की आस॥
देखा देखी भक्ति का कबहूँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यो छाँडिसी ज्यों कैंचुली भुजंग॥
भक्ति गेंद चौगान की भावे कोई लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं कहा रंक कह राय॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता मैं दो न समाहिं॥
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला तिन का तिन के पास॥

सो जोजन साजन बसै मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने जानु समुन्दर पार॥
यह तत वह तत एक है एक प्राण दुइ गात।
अपने जिये से जानिये मेरे जिय की बात॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं तुम मोहिं चितवौ नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है सो मन तुमहीं माहिं॥
सबै रसायन मैं किया प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में सचरै सब तन कंचन होय॥
मिलना जग मे कठिन है मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै जिन माथे मनि होय॥
जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं।
बड़ो दूर है प्रेम घर समझ लेहु मन माहिं॥
हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत॥
कबिरा माला काठ की बहुत जतन का फेर।
माला स्वाँस उसास की जामें गाँठ न मेर॥
कबिरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करे चिन्ता मेरी न कोय॥
साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पीछे हरि खड़े जब माँगे तब देय॥
साईं इतना दीजिए जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय॥

गाया जिन पाया नहीं अनगाये ते दूरि।
जिन गाया विश्वास गहि ताके सदा हजूरि ॥

बिरह बान जेहि लागिया औषध लगत न ताहि।
सुसुकि सुसुकि मरि मरि जिवै उठै कराहि कराहि ॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं जो-कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥

जो हंसा मोती चुगै कांकर क्यों पतियाय।
कांकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय ॥

एक अचंभो देखिया हीरा हाट विकाय।
परखनहारा बाहिरी कौड़ी बदले जाय ॥

राम रतन धन पाइकै गाँठि बाँधि न खोल।
नहिं पटन नहिं पारखी नहिं गाहक नहिं मोल ॥

सर्पहिं दूध पिलाइए सोई विष ह्वै जाय।
ऐसा कोई ना मिला आपे ही विष खाय ॥

एक समाना सकल में सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में तहाँ दूसरा नाहिं ॥

कथनी मीठी खाँड-सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय ॥

कथनी थोथी जगत में करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल उतरै भौ-जल पार ॥

पद जोरै साखी कहै साधन परि गई रौस।
काढ़ा जल पीवै नहीं काढ़ि पियन की हौस ॥

कहता तो बहुता मिला गहता मिला न कोय।
सो कहता बहि जान दे जो नहिं गहता होय॥
जो देखे सो कहै नहिं कहै सो देखे नाहिं।
सुनै सो समझै नहीं रसना दृग श्रुति काहिं॥
मैं मरजीवा समुद्र का डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक॥
डुबकी मारी समुद्र मे निकसा जाय अकास।
गगन मंडल घर किया हीरा पाया दास॥
मरते-मरते जग मुआ औरस मुआ न कोय।
दास कबीरा यो मुआ बहुरि न मरना होय॥
जा मरने से जग डरै मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानन्द॥
घर जारे घर ऊबरै घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया मुआ काल को खाय॥
रोड़ा भया तो क्या भया पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिए ज्यों पैंड़े की खेह॥
खेह भई तो क्या भया उड़ि-उड़ि लागै अङ्ग।
साधू ऐसा चाहिए जैसे नीर निपङ्ग॥
नीर भया तो क्या भया ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिए जो हरि जैसा होय॥
हरी भया तो क्या भया करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिए हरि भज निरमल होय॥

निरमल भया तो क्या भया निरमल मागे ठौर।
मल निरमल से रहित है ते साधू कोई और॥
गगन दमामा बाजिया पड़त निसाने घाव।
खेत पुकारै शूरमा अब लड़ने का दाव॥
अब तो जूझै ही बने मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहेब को सौंपते सोच न कीजे सूर॥
सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की कटे उजारा होय॥
पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिवरता के रूप पर वारो कोटि सरूप॥
कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूंद की आस॥
पपिहा का मन देखकर धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा तऊ न बोरी चंच॥
नाम न रटा तो क्या हुआ जो अन्तर है हेत।
पतिवरता पति को भजै मुख से नाम न लेत॥
सतगुरु सम को है सगा साधू सम को दात।
हरि समान को हितू है हरिजन सम को जात॥
गुरु सिकलीगर कीजिए मनहिं मस्कला देय।
मन की मैल छुड़ाई कै चित दरपन करि लेय॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा साबुन सिरजन हार।
सुरति सिला पर धोइये निकसे जोति अपार॥

पंडित पढ़ि गुन पचि मुए गुरु विन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान विना नहिं मुक्ति है सत्त शब्द परमान॥
बात वनाई जग ठगा मन परवोधा नाहिं।
कह कवीर मन लै गया लख चौरासी माहिं॥
नीर पियावत का फिरै घर घर सायर वारि।
तृषावन्त जो होइगा पीवैगा झख मारि॥
सिंहों के लेहँड़े नहिं हंसों की नहिं पाँत।
लाखों की नहिं वोरियाँ साध न चलैं जमात॥
सव वन तो चन्दन नहीं सूरा का दल नाहिं।
सव समुद्र मोती नहीं यों साधू जग माहिं॥
साधु साधु सब एक हैं ज्यों पोस्ते का खेत।
कोई विवेकी लाल है नहीं सेत का सेत॥
निराकार की आरसी साधो ही की देह।
लखा जो चाहै अलख को इनहीं मे लखि लेह॥
पक्षापक्षी कारणे सव जग रहा भुलान।
निरपक्षै ह्वै हरि भजैं तेई सन्त सुजान॥
संगत भई तो क्या भया हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै तऊ न भीजै कोर॥
हरिया जानै रूखड़ा जो पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही केतहु बूड़ा मेह॥
पसुआ सों पाला परयो रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी वोवै दूना बीज॥

कविरा चंदन के निकट नीम भी चन्दन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया यों जनि बूड़ो कोय॥
माला तिलक लगाइ के भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुँडाइ के चले दुनी के साथ॥
दाढ़ी मूँछ मुँडाइ के हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूँडिये जा मे भरिया खोट॥
मूँड मुँड़ाये हरि मिलै सब कोइ लेहि मुँडाय।
वार बार के मूँडने भेड़ न वैकुण्ठ जाय॥
बांबी कूटें बावरे साप न मारा जाय।
मूरख! बांबी ना डसै सर्प सबन को खाय॥
लोहे केरी नावरी पाहन गरुआ भार।
सिर पै विप की मोटरी उतरन चाहे पार॥
हम तो जोगी मनहिं के तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और॥
कुसल कुसल ही पूछते जग मे रहा न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ कुसल कहाँ से होय॥
पानी केरा बुदबुदा अस मानुप की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात॥
कविरा नौवत आपनी दिन दस लेहु वजाय।
यह पुर पट्टन यह गली वहुरि न देखो आय॥
कविरा गर्व न कीजिये अस जोवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस खंखर भया पलास॥

आव गई आदर गया नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये जबहिं कहा कछु देय॥

प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय॥

चित कपटी सब सों मिलै माहीं कुटिल कठोर।
इक दुरजन इक आरसी आगे पीछे और॥

कबिरा जोगी जगत गुरु तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै जगत गुरू वह दास॥

सोता साध जगाइये करै नाम का जाप।
यह तीनों सोते भले साकत सिंह और साँप॥

निंदक एकहु मति मिलो पापी मलौ हजार।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार॥

माया छाया एक सी बिरला जानै कोय।
भगतों के पीछे फिरै सनमुख भागै सोय॥

चलो चलो सब कोई कहे पहुँचे बिरला कोय।
एक कनक औ कामिनी दुरगम घाटी दोय॥

नारी की झांई परत अन्धा होत भुजङ्ग।
कबिरा तिनकी कौन गति नित नारी को संग॥

जो जल बाढ़ै नाव मे घर मे बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये यही सज्जन को काम॥

छाड़ बड़ा हरि भजन कर द्रव्य बड़ा कुछ देय।
अकल बड़ी उपकार कर जीवन का फल येह॥

देह धरे का गुण यही देहु देहु कछु देहु।
बहुरि न देही पाइये अबकी देहु सो देहु ॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं अपने तन के काज।
परमारथ के कारने मोहिं न आवै लाज ॥
सब ते लघुताई भली लघुता तें सब होय।
जस दुतिया को चन्द्रमा सीस नवै सब कोय ॥
लघुता ते प्रभुता मिलै प्रभुता ते प्रभु दूरि।
चींटी लै शक्कर चली हाथी के सिर धूरि ॥
दया धर्म हिरदे नहीं ज्ञान कथै बेहद।
ते नर नरकहिं जाहिंगे सुनि सुनि साखी शबद ॥
प्रेम प्रीति का चोलना पहिरि कबीरा नाच।
तन मन ता पर वार दूँ जो कोई बोलै साँच ॥
ज्यों अन्धेरे की हाथिया सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत हैं काको धरिये ध्यान ॥
फूटी आँखि विवेक की लखै न संत असंत।
जाके संग दस बीस हैं ताका नाम महंत ॥
बिना वसीले चाकरी बिना बुद्धि की देह।
बिना ज्ञान के जोगना फिरै लगाये खेह ॥

शब्द

: १ :

संतो योग अध्यातम सोई।

एक ब्रह्म सकल घट व्यापै दुतिया और न कोई॥
प्रथम कमल जहँ ज्ञान चारि दल तह गणेश को बासा।
रिधि सिधि जाकी शक्ति उपासा जप ते होत प्रकासा॥
षट दल कमल ब्रह्म को बासा सावित्री सँग सेवा।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं इन्द्र सहित सब देवा॥
अष्ट कमल जहँ हरि सँग लक्ष्मी तीजो सेवक पवना।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं मिटिगो आवागवना॥
द्वादस कमल में शिव को बासा गिरजा शक्ति सारंगा।
षट सहस्र जहँ जाप जपत है ज्ञान सुरति परसंगा॥
षोडस कमल में जीव को बासा शक्ति अविद्या जानै।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं ऐसा भेद बखानै॥
भँवर गुफा में दुइ दल कमला परमहंस कर बासा।
षट सहस्र जहँ जाप जपत हैं परम भाव को [illegible]॥
सहस कमल झिलमिल दरसै आपु [illegible]।
[illegible]॥
[illegible]।
[illegible]॥

यही ज्ञान को कोई बूझै भेद अगोचर भाई।
जो बूझै सो मन को पेखै कहै कबीर समुझाई॥

: २ :

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फास लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी।
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भइ पानी॥
योगी के योगिनी ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिनी ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी॥

: ३ :

भाई कोइ सतगुरु संत कहावै, नैनन अलख लखावै।
डोलत डिगै न बोलत बिसरै जब उपदेश दृढावै॥
प्राण पूज्य किरिया ते न्यारा सहज समाधि सिखावै।
द्वार न रूंधै पवन न रोकै नहिं अनहद अरुझावै॥
यह मन जाय जहां लग जबहीं परमातम दरसावै।
करम करै निहकरम रहै जो ऐसो जुगुत लखावै॥
सदा विलास त्रास नहिं मन में भोग में जोग जगावै।
धरनी त्यागि अकासहुं त्यागै अधर मॅड़इया छावै॥

सुन्न सिखर के सार सिला पर आसन अचल जमावै।
भीतर रहा सो बाहर देखै दूजा दृष्टि न आवै॥
कहत कबीर बसा है हंसा आवागवन मिटावै॥

: ४ :

दरियाव की लहर दरियाव है जो दरियाव औ लहर भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठता नीर है कहो किस तरह दूसरा होयम॥
उसी नाम को फेर के लहर धारो लहर के कहे क्या नीर खोयम।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म मे ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम॥

: ५ :

दुइ जगदीश कहाँ ते आये कहु कौन भरमाया।
अल्ला राम करीम केशव हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गहना नामे भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापे एक नेवाज एक पूजा॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिए।
कोइ हिन्दू कोइ तुरक कहावें एक जमीं पर रहिए॥
वेद किताब पढ़ै वे कुतबा वे मौलाना पांडे।
बिगत बिगत कै नाम धरायो एक माटि के भांडे॥
कहत कबीर वे दोनों भूले रामहिं किनहु न पाया।
वे खस्सी वे गाय कटावैं वादहिं जन्म गँवाया॥

: ६ :

ऐसी दुनिया भई दीवानी, भक्ति भाव नहिं बूझै जी।
कोई आवै तो बेटा मागे, यही गुसाईं दीजै जी॥
कोई आवै दुख का मारा, हम पर किरपा कीजै जी।
कोई आवै तो दौलत माँगै, भेंट रुपैया लीजै जी॥
कोई करावै ब्याह सगाई, सुनत गुसाईं रीझै जी।
साचे का कोई गाहक नाहीं, झूठे जगत पतीजै जी।
कहै कबीर सुनो भइ साधो, अन्धों को क्या कीजै जी॥

जायसी

जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५० जायस में। मृत्यु सं० १६०० अमेठी में।

ये प्रेममार्गी शाखा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनका अमेठी के राजघराने मे पर्याप्त सम्मान था। ये काने और कुरूप थे। एक बार शेरशाह इन्हे देखकर हँस पड़ा। इस पर इन्होंने कहा—"मोहि का हँससि कि कोहरहि।"

यद्यपि ये जन्म से मुसलमान थे तथापि हृदय से इन्हें हिन्दू कहा जा सकता है। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने हिन्दूवीर शिरोमणि की प्रशंसा में अपना प्रसिद्ध महाकाव्य 'पद्मावत' लिखा। पद्मावत प्रेम प्रधान-महाकाव्य है; इसके पूर्वार्ध की कथा अभी तक कवि की अपनी कल्पना कही जाती थी किन्तु प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् और रिसर्च स्कालर श्री पं० भगवद्दत्त बी० ए० ने 'श्रीस्वाध्याय' के साहित्यांग में एक लेख लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि पद्मावत का पूर्वार्ध जायसी की अपनी कल्पना नहीं है, प्रत्युत यह कथा कल्किपुराण से ली गई है और उत्तरार्ध ऐतिहासिक है। यद्यपि जायसी प्रेममार्गी शाखा के कवि थे, तथापि इसमें वीररस का भी स्थान-स्थान पर सुन्दर परिपाक हुआ है। उनका यह महाकाव्य प्रेम-प्रधान ही है। इस काव्य की भाषा अवधी है और यह दोहा, चौपाई, छन्द तथा फारसी की मसनवी पद्धति में लिखा गया है। रहस्यवाद की जितनी सुन्दर अवतारणा इस काव्य में हुई है, उतनी अन्य किसी भी महाकाव्य में नहीं हो पाई। हिन्दी महाकाव्यों में 'रामचरितमानस' के बाद 'पद्मावत' का ही स्थान है। हिन्दू-मुस्लिम हृदय के अजनबीपन को मिटाकर एक-दूसरे को निकट लाने के लिए जायसी ने स्तुत्य और सफल प्रयत्न किया, इसमें कुछ सन्देह नहीं। 'अखरावट' इनकी दूसरी पुस्तक है।

लीन्ह पान वादल औ गोरा। केहि लेइ देउँ उपम तुम जोरा॥
तुम सावंत, न सरवरि कोऊ। तुम हनुवंत अङ्गद सम दोऊ॥
तुम अरजुन औ भीम भुवारा। तुम वल रन दल मंडनहारा॥
राम लखन तुम दैत सँघारा। तुमहीं सुर वलभद्र भुवारा॥
तुमहिं युधिष्ठिर औ दुरजोधन। तुमहिं नल नील दोउ संवोधन॥
तुम परदुम्न औ अनिरुध दोउ। तुम अभिमन्यु वोल सव कोऊ॥
तुम्ह सरि पूज न विक्रम साके। तुम हमीर हरिचन्द सम आँके॥

जस अति संकट पडवन्ह भएउ भीवँ वँदि छोर।
तस परवस पिउ काढ़हु राखि लेहु भ्रम मोर॥

गोरा वादल वीरा लीन्हा। जस हनुवँत अङ्गद वर कीन्हा॥
कंवल-चरन भुइं धरि दुख पावहु। चढ़ि सिंघासन मंदिर सिधावहु॥
सुनतहि सूर कंवल हिय जागा। केसरि-वरन फूल हिय लागा॥
जनु निसि महँदिन दीन्ह देखाई। भा उदोत, मसि गई विलाई॥
वादल केरि जसोवै माया। आइ गहेसि वादल कर पाया॥
वादल राय, मोर तुइ वारा। का जानसि कस होइ जुझारा॥
वादसाह पुहुमी-पति राजा। सनमुख होइ न हमीरहि छाजा॥

जहाँ दलपती दलि मरहिं तहाँ तोर का काज?
आजु गवन तोर आवै वैठि मानु सुख राज॥

मातु न जानसि वालक आदी। हौं वादला सिंह रनवादी॥

सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा। सिंघ क जाति रहै किमि छपा ?
तौ लगि गाज, न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौ अकेला ॥
को मोहि सौंह होइ मैमंता। फारौं सूंड, उखारौं दन्ता ॥
जुरौं स्वामि संकरे जस ढारा। पेलौं जस दुरजोधन मारा ॥
अङ्गद कोपि पाँव जस राखा। टेकौं कटक छतीसौ लाखा ॥
हनुवँत सरिस जँघ वर जोरौं। दहौं समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौं ॥

सो तुम, मातु जसोवै, मोहिं न जानहु वार।
जहँ राजा वलि बाँधा छोरौं पैठि पतार ॥

बादल गवन जूझ कर साजा। तैसेहि गवन आइ घर बाजा ॥
का बरनौं गवने कर चारू। चन्द्रबदनि रचि कीन्ह सिंगारू ॥
मानि गवन सो घूँघुट काढ़ी। विनवै आइ बार भइ ठाढ़ी ॥
मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा ॥
तब धनि विहँसि कहा गहि फेंटा। नारि जो विनवै कन्त न मेटा ॥
आजु गवन हौं आई, नाहां। तुम न. कंत, गवनहु रन माहां ॥
धनि न नैन भरि देखा पीऊ। पिउ न मिला धनिसौं भरि जीऊ ॥

पायँन्ह धरा लिलाट धनि 'विनय सुनहु हो राय'।
अलक परी फँदवार होइ कैसेहु तजै न पाय ॥

छांडि फेट धनि, बादल कहा। पुरुष-गवन धनि फेंट न गहा ॥
जो तुइ गवन आइ, गजगामी। गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी ॥
जौ लगि राजा छूटि न आवा। भावै बीर. सिंगार न भावा ॥
तिरिया भूमि खड्ग कै चेरी। जीत जो खड्ग होइ तेहि केरी ॥
जेहि घर खड्ग मोंछ तेहि गाढ़ी। जहाँ न खड्ग मोंछ नहिं दाढ़ी ॥

तव मुँह मोंछ, जीउ पर खेलौं। स्वामि काज इन्द्रासन पेलौं ॥
पुरुप बोलि कै टरै न पाछू। दसन गयन्द गीउ नहिं काछू ॥

तुइ अबला, धनि, कुबुधि बुधि जानै काह जुझार।
जेहि पुरुषहि हिय वीर रस भावै तेहि न सिंगार ॥

एकौ विनति न मानै नाहाँ। आगि परी चितउर धनि माहाँ ॥
उठा जो धूम नैन करुवाने। लागे परै आँसु झहराने ॥
भींजे हार, चीर, हिय चोली। रही अछूत कन्त नहिं खोली ॥
जौ तुम कन्त, जूझ जिउ काँधा। तुम किय साहस, मैं सत बाँधा ॥
रन संग्राम जूझ जिति आवहु। लाज होइ जौ पीठि देखावहु ॥
मतै वैठि बादल औ गोरा। सो मत कीजै परै नहिं भोरा ॥
जस तुरकन्ह राजा छर साजा। तस हम साज छोड़ावहिं राजा ॥

पुरुष तहाँ पै करै छर जहँ वर किए न आट।
जहाँ फूल तहँ फूल है जहाँ काँट तहँ काँट ॥

सोरह सै चंडोल सँवारे। कुँवर सजोइल कै बैठारे ॥
पद्मावति कर सजा विवानू। बैठ लोहार न जानै भानू ॥
रचि विवान सो साजि सँवारा। चहूँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा ॥
साजि सबै चडोल चलाए। सुरँग ओहार, मोति बहु लाए ॥
भए सँग गोरा बादल बली। कहत चले पद्मावति चली ॥
हीरा रतन पदारथ झूलहिं। देखि विवान देवता भूलहिं ॥
सोरह सै सँग चलीं सहेली। कँवल न रहा, और को वेली ?

राजहिं चलीं छोड़ावै तहँ रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिंचीं सँग सोरह सै चंडोल ॥

राजा बँदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहँ अगमना॥
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा। बिनती कीन्ह पायँ गहि गोरा॥
बिनवौं बादसाह सौं जाई। अब रानी पद्मावति आई॥
बिनती करै आइ हौं दिल्ली। चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली॥
बिनती करै जहाँ है पूँजी। सब भँडार कै मोहि स्यो कूँजी॥
एक घरी जौ अग्या पावौं। राजहिं सौंपि मँदिर महँ आवौं॥
तब रखवार गए सुलतानी। देखि अँकोर भए जस पानी॥

लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ।
जहाँ चलावै तहाँ चलै फेरे फिरै न माथ॥

लोभ पाप कै नदी अँकोरा। सत्त न रहै हाथ जौं बोरा॥
जहँ अँकोर तहँ नीक न राजू। ठाकुर केर बिनासै काजू॥
भा जिउ बिउ रखवारन्ह केरा। दरब लोभ चंडोल न हेरा॥
जाइ साह आगे सिर नावा। 'ए जगसूर' चाँद चलि आवा॥
जावत हैं सब नखत तराईं। सोरस सै चंडोल सो आईं॥
चितउर जेति राज कै पूँजी। लेइ सो आइ पद्मावति कूँजी॥
बिनती करै जोरि कर खरी। लेइ सौंपौं राजा एक घरी॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी दुऔ जगत मोहि आस।
पहले दरस देखावहु तौ पठवहु कैलास॥

आग्या भई, जाइ एक घरी। छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी॥
चलि बिवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत सब छावा॥
पद्मावति के भेस लोहारू। निकसि काटि बँदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥

गोरा बादल खांडे काढ़े । निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े ॥
तीख तुरंग गगन सिर लागा। केहुँ जुगुति करि टेकी बागा ॥
जो जिउ ऊपर खड़्ग सँभारा। मरनहार सो सहसन्ह मारा ॥

भई पुकार साह सौं, ससि औ नखत सो नाहिं।
छर कै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं ॥

लेई राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ, मिरिग खल भले ॥
चढा साहि, चढ़ि लाग गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी ॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा। गहन छूटि पुनि चाहै गहा ॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू। अब इहै गोइ, इहै मैदानू ॥
तुइ अब राजहिं लेइ चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा ॥
वह चौगान तुरुक कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला ॥
तौ पावौ बादल अस नाऊँ। जौ मैदान गोइ लेइ जाऊँ ॥

आजु खड़्ग चौगान गहि करौं सीस रिपु गोइ।
खेलौं सौंह साह सौं हाल जगत महँ होइ ॥

तब अगमन होइ गोरा मिला। तुइ राजहि लेइ चल, बादला !
पिता मरै जौ सँकरे साथा। मीचु न देइ पूत के माथा ॥
मैं अब आउ भरी औ भूँजी। का पछिताव आउ जौ पूँजी ॥
बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी। तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी ॥
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हे। और बीर बादल सँग कीन्हे ॥
गोरहि समदि मेघ असगाजा। चला लिए आगे करि राजा ॥
गोरा उलटि खेत भी ठाढा। पूरुप देखि चाव मन बाढ़ा ॥

आव कटक सुलतानी गगन छपा मसि माँझ ।
परति आव जग कारी होति आव दिन साँझ ॥

फिरि आगे गोरा तब हांका । 'खेलौं, करौं आजु रन साका ॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा । टरौं न टारे, अंग न मोरा ॥
सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ-घटा मोहिं देखि बिलाहीं ॥
सहसौ सीस सेस सम लेखौं । सहसौ नैन इन्द्र सम देखौं ॥
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू । कंस न रहा, और को साजू ॥
हौं होइ भीम अरजुन रन गाजा । पाछे घालि डुंगवै राजा ॥
होइ हनूवँत जमकातर ढाहौं । आजु स्वामी साकरे निबाहौं ॥
होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद्र महँ मेड़ ।
कटक साह कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेड़ ॥

ओनई घटा चहूँ दिसि आई । छूटहिं बान मेघ झरि लाई ॥
डोलै नाहिं देव जस आदी । पहुँचे आइ तुरुक सब बादी ॥
हाथन्ह गहे खड़ग हरद्वानी । चमकहिं सेल बीजु कै पानी ॥
सोझ बान जस आवहिं गाजा । बासुकि डरै सीस जनु बाजा ॥
नेजा उठे डरै मन इंदू । आइ न बाज जानि कै हिन्दू ॥
गोरै साथ लीन्ह सब साथी । जस मैमन्त सूँड़ बिनु हाथी ॥
सब मिलि पहिलीं उठौनी कीन्ही । आवत आइ हाकि रन दीन्ही ॥
रुंड मुंड अब टूटहिं स्यो बखतर औ कूँड़ ।
तुरय होहिं बिन कांधे हस्ति होहिं बिनु सूँड़ ॥

भइ बगमेल, सेल घनघोरा । औ गज-पेल, अकेल सो गोरा ॥
सहस कुँवर सहसौं सत बाँधा । भार पहार जूझ कर काँधा ॥

लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे ॥
जैसे पतङ्ग आगि धँसि लेई। एक मुवै, दूसर जिउ देई ॥
टूटहिं सीस, अधर धर मारै। लोटहिं कंधहिं कंध निरारै ॥
कोई परहिं रुहरि होइ राते। कोई घायल घूमहिं माते ॥
कोई खुरखेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ॥

घरी एक भारत भा भा असवारन्ह मेल ।
जूझि कुँवर सब निवरे गोरा रहा अकेल ॥

गोरै देख साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा, बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन विदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यों घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहिं सीस कवन्ध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥

भइ अग्यो सुलतानी 'वेगि करहु एहि हाथ ।
रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ' ॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नहिं टेका ॥
जेहि दिसि उठ सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहिं ठाँव न आवा ॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख सौंहहिं दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥
सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा ॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरियारू ॥

मारेसि साँग पेट महँ धँसी। काढ़ेसि हुमुकि आनि भुइँ खँसी॥
भाट कहा धनि गोरा, तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै तुरय देत है पाव॥

कहेसि अंत अब भा भुइँ परना। अत त खसे खेह सिर भरना॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ। परा खड़ग जनु परा निहाऊ॥
दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा। सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा॥
तीसर खड़ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत, घाव न आवा॥
तब सरजा कोपा बरिबंडा। जनहु सदूर केर भुजदंडा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु परी टूटि सिर गाजा॥
गोरा परा खेत महँ सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा लेइ चितउर नियरान॥

पदमावति मन रही जो झूरी। सुनत सरोवर-हिय गा पूरी॥
अद्रा महि-हुलास जिमि होई। सुख सोहाग आदर भा सोई॥
राजा जहाँ सूर परगासा। पदमावती मुख-कँवल बिगासा॥
कँवल पायँ सूरुज के परा। सूरुज कँवल आनि सिर धरा॥
पूजा कौनि देउँ तुम्ह राजा? सबै तुम्हार, आव मोहिं लाजा॥
तन मन जोबन आरति करऊँ। जीव काढ़ि नेछावरि धरऊँ॥
पंथ पूरि कै दिस्टि बिछावौं। तुम पग धरहु, सीस मैं लावौं॥
जौ सूरज सिर ऊपर तौ रे कँवल सिर छात।
नाहिं त भरे सरोवर सूखे पुरइन-पात॥

परसि पायँ राजा के रानी। पुनि आरति बादल कहँ आनी॥

पूजे बादल के भुजदंडा । तुरय के पांव दाब कर-खंडा ॥
यह गजगवन गरब जो मोरा । तुम्ह राखा, बादल औ गोरा ॥
सेंदुर-तिलक जो आंकुस अहा । तुम्ह राखा, माथे तौ रहा ॥
काछ काछि तुम जिउ पर खेला । तुम्हे जिव आनि मंजूषा मेला ॥
राखा छात चँवर औ धारा । राखा छुद्रघंट - झनकारा ॥
तुम हनुवंत होइ धुजा पईठे । तब चितउर पिय आइ बईठे ॥

पुनि गजमत्त चढ़ावा नेत बिछाई खाट ।
बाजत गाजत राजा आइ बैठ सुख पाट ॥

सुनि देवपाल राय कर चालू । राजहिं कठिन परा हिय सालू ॥
दादुर कतहुँ कँवल कहँ पेखा । गादुर मुख न सूरकर देखा ॥
अपने रँग जस नाच मयूरू । तेहि सरि साध करै तमचूरू ॥
जौ लगि आइ तुरुक गढ़ बाजा । तौ लगि धरि आनौं तब राजा ॥
नींद न लीन्हि, रैनि सब जागा । होत विहान जाइ गढ़ लागा ॥
कुंभलनेर अगम गढ़ बांका । विषम पंथ चढि जाइ न झांका ॥
राजहि तहां गएउ लेइ कालू । होइ सामुहँ रोपा देवपालू ॥

दुवौ अनी सनमुख भई लोहा भएउ असूझ ।
सत्रु जुझि तब नेवरै एक दुवौ महँ जूझ ॥

जौ देवपाल राव रन गाजा । मोहिं तोहिं जूझ एकौझा, राजा !
मेलेसि साग आइ विष-भरी । मेटि न जाइ काल कै घरी ॥
आइ नाभि पर साग बईठी । नाभि बेधि निकसी सो पीठी ॥
चला मारि तब राजै मारा । टूट कंध, धड़ भएउ निनारा ॥

सीस काटि कै बैरी बाँधा । पावा दावँ बैर जस साधा ॥
जियत फिरा आएउ बल-भरा । माँझ बाट होइ लोहै धरा ॥
कारी घाव जाइ नहिं डोला । रही जीभ जम गही, को बोला ?

सुधि-बुधि तौ सब बिसरी भार परा मँझबाट ।
हस्ति घोर को का कर घर आनी गइ खाट ॥

जौ लहि साँस पेट महँ अही । तौ लहि दसा जीउ कै रही
काल आइ देखराई साँटी । उठि जिउ चला छोड़ि कै माटी ॥
का कर लोग, कुटुंब, घर-बारू । का कर अरथ दरब संसारू ?
ओही घरी सब भएउ परावा । आपन सोइ जो परसा, खावा ॥
अहे जे हितू साथ के नेगी । सबै लाग काढ़ै तेहि बेगी ॥
हाथ झारि जस चलै जुवारी । तजा राज, होइ चला भिखारी ॥
जब हुत जीउ, रतन सब कहा । भा बिनु जीउ न कौड़ी लहा ॥

गढ सौंपा बादल कह गए टिकठि बसि देव ।
छोड़ी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव ॥

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी । चली साथ पिउ के होइ जोरी ।
सूरुज छिपा, रैनि होइ गई । पूनो-ससि, सो अमावस भई ॥
छोरे केस, मोति-लर छूटीं । जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं ॥
सेंदूर परा जो सीस उघारा । आगि लागि चह जग अँधियारा ॥
'यही दिवस हौं चाहति, नाहा । चलौं साथ, पिउ, देइ गलबाहाँ ॥
सारस पंखि न जियै निनारे । हौं तुम्ह बिनु का जिऔं, पियारे ॥
नेवछावरि कै तन छहरावौं । छार होइँ सँग बहुरि न आवौं ॥

दीपक प्रीति पतंग जेउँ जनम निबाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कंठ लागि जिउ देउँ॥

नागमती पद्मावति रानी। दुवा महा सत सती बखानी॥
दुवो सवति चढ़ि खाट बईठी। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी॥
बैठी कोइ राज औ पाटा। अंत सबै बैठे पुनि खाटा॥
चन्दन अगर काठ सर साजा। औ गति देइ चले लेइ राजा॥
बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवो कंत लेइ चाहहिं सूता॥
एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दुसरे होइ ओर निबाहू॥
जियत जौ जरै कंत के आसा। मुएँ रहसि बैठे एक पासा॥

आजु सूर दिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय आजु आगि हम्ह जूड़॥

सर रचि दान-पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भाँवरि लीन्हा॥
'यह जग काह जो अछहि न आथी। हम तुम, नाथ, दुहूँ जग साथी॥
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ीं दुवौ कंत गर लाई॥
वै सहगवन भईं जब जाई। बादसाह गढ़ छेका आई॥
तौ लगि सो अवसर होइ बीता। भए अलोप राम औ सीता॥
आइ साह जौ सुना अखारा। होइगा राति दिवस उजियारा॥
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्हि उड़ाइ पिरथिमी झूठी॥

जौहर भईं सब इस्तिरी पुरुष भए संग्राम।
बादसाह गढ़ चूरा चितउर भा इसलाम॥

मुहमद कवि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा॥

जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ी प्रीति नयनन्ह जल भेई॥
औ मैं जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा? कहां सुआ अस बुधि उपराजा॥
कहा अलाउद्दीन सुलतानू? कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू?
कहँ सुरूप पद्मावति रानी? कोइ न रहा, जग रही कहानी॥
धनि सोइ जस कीरति जासू? फूल मरै, पै मरै न बासू?

केइ न जगत जस बेंचा केइ न लीन्ह जस मोल।
जो यह पढ़ै कहानी हम्ह सँवरै दुइ बोल॥

सूरदास

जीवन-परिचय

जन्म सं० १५४० रुणकता में, गोलोकवास सं० १६२० पारसोली में।

महात्मा सूरदास कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि एवं सर्वश्रेष्ठ महाकवि थे। इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे मतभेद है। रुणकता (रेणुका क्षेत्र) अथवा सिहीं नामक ग्राम में इनका जन्म माना गया है। ये मथुरा और आगरा के मध्य मे गऊघाट नामक स्थान पर रहा करते और भगवद्भक्ति के गीत गाया करते थे। इनके अन्धे होने के सम्बन्ध में भी बहुत से मत हैं। चाहे ये किसी रोग से अन्धे हुए हों अथवा अपने हाथों अपनी आँखें निकाल ली हों, कुछ भी हो, यह तो निश्चित है कि यह जन्मान्ध नहीं थे।

एक बार गऊघाट पर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने इनके पद सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की और इन्हें श्रीनाथ जी के मन्दिर में लाकर कीर्तन का मुखिया बना दिया। ये तभी से भगवान कृष्ण की भक्ति मे तन्मय होकर नित्य नए पद बनाकर अपने प्रभु को रिझाने लगे। इन्हें 'अष्टछाप' के आठ कवियों मे प्रधान स्थान दिया गया। १ 'सूरसागर' २ 'साहित्य लहरी' तथा ३ 'सूरसारावली' इनके बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। सूरसागर मे श्रीमद्भागवत का हिन्दी गीतों में स्वतन्त्र भावानुवाद किया गया है। इस अनुवाद के लिए वल्लभाचार्य जी ने आदेश दिया था। पहले नौ स्कन्धों का संक्षिप्त चलता सा वर्णन मात्र कर दिया गया है। किन्तु दशम स्कन्ध का बड़ा विस्तृत वर्णन है। उसमें भी भगवान कृष्ण की बाल-लीला, रूपमाधुरी, प्रणय, विरह-वर्णन, विनय, शृङ्गार, गोपी उद्धव-संवाद अथवा भ्रमरगीत बड़े विस्तृत

रूप से कहे गए हैं; क्योंकि यह मुक्तक गीतकाव्य है अतः इसमें एक ही भाव के अनेकों पद बन गए हैं।

सूरदास वस्तुतः वत्सल रस की मूर्ति ही हैं। इन्होंने बालकृष्ण का बड़ा ही स्वाभाविक सरस सुन्दर चित्र चित्रित किया है इसलिए 'सूर' का दूसरा नाम 'वत्सलरस' कहा गया है। वत्सलरस ही क्यों विरह, रूपमाधुरी, गोपी-उद्धव-संवाद आदि अन्य विषयों में भी सूरदास अपने उपनाम आप ही हैं। भाषा की कोमलता का तो कहना ही क्या? एक तो योंही ब्रजभाषा संस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक कोमल है और फिर वह सूर-सरीखे महापुरुष की वाणी से निकल कर सुगन्धि और मृदुलता से युक्त सुवर्ण बन गई है।

जैसी तन्मयता, सरलता और निश्चल सात्विक भक्ति सूर और तुलसी में पाई जाती है वैसी अन्य किसी कवि में नहीं। वास्तव में तुलसी और सूर हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य और चन्द्र हैं। इन महात्मा की प्रशंसा में कहा गया निम्न पद—

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, बेध्यो सकल शरीर॥"

अक्षरशः सत्य है।

विनय

अपनी भक्ति दै भगवान।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचै आन॥
जा दिना तें जनमु पायो यह मेरी रीति।
विषय-विष हठि खात, नाहीं डरत करत अनीति॥
थके किंकर जूथ जम के टारे टरत न नेक।
नरक-कूपनि जाइ जमपुर पर्‍यो बार अनेक॥
महा माचल मारिबे की सकुच नाहिन मोहिं।
पर्‍यो हौं पन किये द्वारे लाज पन की तोहिं॥
नाहिनै काँचौ कृपानिधि करौ कहा रिसाइ।
'सूर' तबहुँ न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़राइ॥

अब कै माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥
मीन-इन्द्रिय अतिहि काटत मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सेवार॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवत देत तिय-सुत नाम-नौका ओर॥

थक्यो बीच बेहाल विह्वल सुनहु करुनामूल।
स्याम! भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' ब्रज के कूल॥

अब हौं नाच्यौ बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल।
भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
तसना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फैंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूर करहु नँदलाल॥

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूँगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
परम सुस्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर जो जाने सो पावै॥
रूपरेखगुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं ताते 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दए सुदामहिं अरु गुरु को सुत आनि॥
रावन के दस मस्तक छेदे सर हति सारँग-पानि।
विभीषण को लंका दीनी पूरबली पहिचानि॥
मित्र सुदामा कियो अजाचक प्रीति पुरातन जानि।
'सूरदास' सों कहा निठुराई नैननि हूँ की हानि॥

छाँड़ि मन हरि-विमुखन को संग ।
जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ॥
कहा भयो पय पान कराये विष नहिं तजत भुजंग ।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निस दिन रहत उमंग ॥
कागहिं कहा कपूर खवाए स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़े न दूजो रंग ॥

माधव जू ! यह मेरी इक गाइ ।
अब आजु ते आप आगे दई लै आइये चराइ ॥
है अति हरहाई हटकत हू बहुत अमारग जाति ।
फिरत वेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति ॥
हित कै मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माँह ।
सुख सोऊँ सुनि वचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह ॥
निवरक रहौं 'सूर' के स्वामी जन्म न पाऊँ फेरि ।
मैं ममता रुचि सों रघुराई पहिले लेउ निबेरि ॥

बाललीला

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत ।
नंद घरनि गावति हलरावति पलना पर किलकत हरि खेलत ॥
जो चरनारविंद श्रीभूषन उरते नेकु न टारति ।
देखों धौं का रस चरनन में मुख मेलत करि आरति ॥

जा चरनारबिंद के रस को सुर नर करत विवाद
यह रस तो है मोको दुरलभ ताते लेत सवाद।
उछलत सिंधु धराधर कॉप्यो, कमठपीठि अकुलाइ
सेस सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ॥
बढ़्यो वृच्छ बर, सुर अकुलाने गगन भयो उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात॥
करुना करी छाँड़ि पग दीनो जानि सुरन मन संस
'सूरदास' प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस।

कान्हो चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मन में अभिलाप करत ही सो देखत नंदघरनी
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मन हरनी।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छवि जाय न बरनी॥
व्रज युवती सब देखि थकित भईं सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवो जसुदा को नंदन 'सूरदास' को तरनी।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किते बार मोहिं दूध पीवत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जसु कहत बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि सी भुइ लोटी।
काची दूध पिवावत पचि पचि देत न माखन रोटी
सूर स्याम चिरजिव दो भैयाँ हरि हलधर की जोटी।
ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहिं लिये चंदा दिखरावत
रोवत कत बलि जाऊँ तुम्हारी देखौ धौं भरि नैन जुड़ावत।
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लै लै जु बतावत

मोसों लगत किधौं यह खाटो देखत अति सुन्दर मन भावत॥
मनहि मन हरि बुद्धि करत हैं माता को कहि ताहि मँगावत।
लागी भूख चन्द मैं खैहौं देहु रिस करि विरुझावत॥
जसुमति कहत कहा मैं कीनो रोवत मोहन अति दुख पावत।
'सूर' स्याम को जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उड़त लखावत॥

बार बार जसुमति सुत बोधति आउ चंद तोहिं लाल बुलावै।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपु न खैहैं तोहिं खवावै॥
जल-भाजन कर लै उठावति या मे तनु धरि आवै।
हाथहिं हर तोहिं लीने खेलै नहिं धरनी बैठावै॥
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो चंदा दिखरावै।
'सूरदास' प्रभु हँसि मुसकाने बार बार दोऊ कर नावै॥

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो॥
कहा करौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु॥
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर॥
तू मोहीं को मारन सीखी दाउहिं कबहूँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति पुनि पुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

खेलन दूरि जात कित कान्हा।
आजु सुन्यो वन हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा॥
इक लरिका अवहीं भजि आयो वोल बुझावहु ताहि।
कान तोरि वह लेत सवन के लरिका जानत जाहि॥
चलिये वेगि सवेर सवै भजि अपने अपने धाम।
'सूरदास' यह वात सुनत ही बोलि लिये वलराम॥

सखा सहित गए माखन चोरी।
देख्यो स्याम गवाच्छ पंथ ह्वै गोपी एक मथति दधि भोरी॥
हेरि मथानी धरी माट पै माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी मागन हरि हू पाई घात॥
पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सव खाई।
छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसे सव वाहिर आई॥
आइ गई कर लिये मटुकिया घर ते निकले ग्वाल।
माखन कर दधि मुख लपटाने देखि रही नंदलाल॥
भुज गहि लियो कान्ह को, वालक भागे व्रज की खोरि।
'सूरदास' प्रभु ठगि रही ग्वालिनि मनु हरि लियो अँजोरि॥

आई छाक वुलाए स्याम।
यह सुनि सखा सवै जुरि आए सुवल सुदामा अरु श्रीदाम॥
कमलपत्र दोना पलास के सव आगे धरु परसति जात।
ग्वाल मण्डली मध्य स्यामघन सव मिलि भोजन रुचिर खात॥
ऐसी भूख माँझ इह भोजन पठै दियो करि जसुमति मात।
'सूर' स्याम अपनो नहिं जेंवत ग्वालन कर ते लै लै खात॥

मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि जतन वटैया ॥
अब बाबा कहि कहत नन्द को जसुमति को कहै मैया ।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिजावत तब उठि चलो खिसैया ॥
पाछे नन्द सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।
'सूर' नन्द बलरामहिं धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भइ गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो ।
चार पहर बंशीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो ॥
मैं बालक बँहियन को छोटो छीको किहि बिधि पायो ।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो ॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ॥
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहिं नाच नचायो ।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायो ॥

  

रूपमाधुरी

बरनों बाल-भेप मुरारि ।
थकित जित तित अमर-मुनि-गन नन्द लाल निहारि ॥
केस सिर बिन पवन के चहुँ दिसा छिटके झारि ।
सीस पर धरे जटा मानौ रूप किय त्रिपुरारि ॥

तिलक ललित ललाट केसरि बिन्दु सोभाकारि।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यो निज रिपु जारि॥
कण्ठ कठुला नीलमनी, अँभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर, यहि भाय भये मदनारि॥
कुटिल हरिनख हिये हरि के हरपि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यो भालहू ते उतारि॥
सदन-रज तन स्याम सोभित सुभग इहि अनुहारि।
मनहु अङ्ग विभूति राजत सम्भु सो मधु-हारि॥
त्रिदसपति-पति असन को पति अति जननि सों कर आरि।
'सूरदास' विरंचि जाको जपत निज मुख-चारि॥

देखो माई सुन्दरता को सागर।
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अम्बुनिधि, कटि पट-पीत तरंग।
चितवत चलित अधिक रुचि उपजत भँवर परत अंग अङ्ग॥
मीन नैन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजङ्ग।
मुकुत-माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिए संग॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिन नखचन्द।
मनु अडोल वारिध मैं बिंबित राका उडगन वृन्द॥
वदन चन्द्र-मंडल की शोभा अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सुरूप सकल गोपी जन रहीं निहारि निहारि।
तदपि 'सूर' तरि सकीं न सोभा रही प्रेम पचि हारि॥

नटवर वेप काछे श्याम।
पद कमल नख इन्दु सोभा ध्यान पूरन काम॥
जानु जंघ सुघट निकाई नाहिं रंभा तूल।
पीत पट काछनी मानहु जलज-केसरि भूल॥
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटि के भीर।
मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं ह्रद तीर॥
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिन हार।
मनहुँ गंगा बीच जमुना चली मिलि कै धार॥
बाहुदण्ड बिसाल तट दोउ अङ्ग चन्दन रेन।
तीर तरु बनमाल की छवि ब्रज जुवति सुखदेन॥
चिबुक पर अधरन दसन दुति बिम्ब बीजु लजाइ।
नासिका सुक नैन खञ्जन, कहत कवि सरमाइ॥
स्रवन कुण्डल कोटि रवि छवि भृकुटि काम कोदंड।
'सूर' प्रभु हैं नीप के तर सिर धरे स्रीखण्ड॥

❀ ❀ ❀

मुरली-महिमा

माई री, मुरली अति गर्व काहू बदति नाहीं आजु।
हरि को मुखकमल देखि, पायो सुखराजु॥
देखत करत पीठ ढीठ, अधर छत्रछाहीं।
चमर-चिकुर राजत तहँ, सुन्दर सभा माहीं॥
जमुना के जलहिं नाहिं, जलधि जान देति।
सुर-पुर तें सुर-विमान, भुवि बुलाइ लेति॥

थावर चर जङ्गम जहँ, करति जीति अजित।
वेद की विधि मेटि चलति, आपने ही रीति॥
वंसी-वस सकल 'सूर' सुर नर मुनि नाग।
श्रीपति हूँ श्री बिसारी एही अनुराग॥

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नन्द-नन्दहिं, नाना भाँति नचावति॥
राखति एक पायँ ठाढ़ो करि, अति अधिकार जनावति।
कोमल अङ्ग आपु आज्ञा गुरु, कटि टेढ़ी ह्वै जावति॥
अति आधीन सुजान कनौड़े, गिरिधर नारि नवावति।
'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन, अधर सुसीस डुलावति॥

बाँसुरी बिधिहूँ ते प्रबीन।
कहिये आहि को ऐसो, कियो जगत-आधीन॥
चारि बदन उपदेस बिधाता, थापि थिर चर नीति।
आठ बदन गरजति गर्बीली, क्यों चलिये यह रीति॥
बिपुल बिभूति लई चतुरानन, एक कमल करि थान।
हरिकर-कमल जुगल पर बैठी बाढ्यो यह अभिमान॥
एक बेर श्रीपति के सिखये, उन लिय सब गुन-गान।
याके तौ नंदलाल लाड़िलो, लग्यो रहत नित कान॥
एक मराल-पीठि-आरोहन, बिधि भयो प्रबल प्रसंस।
यह तौ सकल बिमान किये, गोपीजन-मानस हंस॥
श्री बैकुण्ठनाथ उर-बासिनि, [illegible]।
तातें सुनु सूरदास [illegible], [illegible] बैसी यह [illegible]॥

अधर-सुधा पी कुल-व्रत टार्‌यो, नहीं सिखा नही ताग ।
तदपि सूर या नंद-सुवन को, याही सौ अनुराग ॥

जसोदा बार-बार यों भाखै ।
है ब्रज मे कोउ हितू हमारो, चलत गोपालहिं राखै ?
कहा काज मेरे छगन-मगन कौ, नृप मधुपुरी बुलायो ।
सुफलकसुत मेरे प्रान हनन कों, कालरूप है आयो ॥
बर ये गोधन हरौ कंस सब, मोहि बंदी लै मेलो ।
इतने ही सुख कमल-नयन मेरी, अँखियन आगे खेलो ॥
बासर बदन बिलोकत जीवों, निसि निज अङ्कम लाऊँ ।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मबस, तौ हँसी काहि बोलाऊँ ॥
कमल-नैन गुन टेरत-टेरत, अधर बदन कुम्हिलानी ।
'सूर' कहाँ लगि प्रगट जनाऊँ, दुखित नंद की रानी ॥
मेरे कुँवर कान्ह बिन सब कछु, वैसे ही धर्‌यो रहै ॥
को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै ?
सूने भवन जसोदा सुत के, गुनि-गुनि सूल सहै ।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि, उरहन कोउ न कहै ॥
जो ब्रज में आनन्द होत सो, मुनि मनसहु न गहै ।
'सूरदास' स्वामी बिनु गोकुल, कौड़ी हूँ न लहै ॥

भ्रमर-गीत

ऊधो ब्रज की दसा बिचारो ।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा बिस्तारो ॥
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जियं माहीं ।

कितनो वीच विरह-परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं ?
तुम परवीन चतुर कहियत हौ, संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिर फिर कहा गहत हौ ?
वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तें टारौं।
जोग जुगुति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं॥
जिहि उर कमल-नयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुण क्यों आवै ?
'सूरदास' सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरौ भावै॥

ऊधो, ना हम विरहिनि ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्राण रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास॥
विरही मीन मरे जल बिछुरे, छाँड़ि जीवन की आस।
दास-भाव नहिं तजत पपीहा, वरु साहि रहत पियास॥
पङ्कज परम पङ्क में विरहत, बिधि कियो नीर निरास।
राजिव रवि कौ दोष न मानत, ससि सों सहज उदास॥
प्रगट प्रीति दशरथ प्रतिपाली, प्रियतम को वनवास।
'सूरस्याम' सों पति ब्रत कीन्हों, छाँड़ि जगत उपहास॥

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाति बूँद न छाँडत, प्रगट पुकारत ताते॥
समुझत मीन नीर की बातें, तजत प्रान हठि हारत।
जानि कुरंग नेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत॥
निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते।
ज्योति पतंग देखि वपु जारत, भये न प्रेमघट रीते॥
कहि अलि, क्यों बिसरति वै बातें, सँग जो करि ब्रजराजै।
कैसे 'सूरस्याम' हम छाँडैं, एक देह के काजैं॥

कोउ व्रज बाँचत नाहिंन पाती।
कत लिखि लिखि पठवत नँद-नंदन, कठिन विरह की काती॥
नयन सजल कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती।
परसत जरैं विलोकत भीजति, दुहूँ भाँति दुख छाती॥
क्यों समझै ये अंक 'सूर' सुनु, कठिन मदन सर घाती।
देखे जियहिं स्यामसुन्दर के रहहिं चरन दिन राती॥

उर मे माखन-चोर गड़े।
अब कैसहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े॥
जदपि अहीर जसोदा-नन्दन, तदपि न जात छड़े।
वहाँ बने जदुवंश महाकुल, हमहिं न लगत बड़े॥
को वसुदेव, देवकी है को, ना जानै औ बूझैं।
'सूर' स्यामसुन्दर विन देखे, और न कोऊ सूझैं

ऊधो मन नाहिं दस-बीस।
एक हुतो सो गयो स्यामसँग, को आराधै ईस?
भइ अति सिथिल सबै माधव विनु, जथा देह विनु सीस।
स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि-वरीस॥
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस॥

निरगुन कौन देस कौ बासी।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक जननि को कहियत, को नारी को दासी।
कैसो वरन भेष है कैसो, केहि रस मैं अभिलाषी॥

पावैगौ पुनि कियौ आपनौ जो रे कहैगौ गाँसी।
सुनत कौन ह्वै रह्यौ ठगौ सौ सूर सबै मति नासी॥

ऊधौ, हम लायक सिख दीजै।
यह उपदेस अगिनि ते तातो कहो कौन विधि कीजै॥
तुमहीं कहौ इहाँ इतननि मैं सीखनहारी को है।
जोगी जती रहित माया तैं तिनहीं यह मति सोहै॥
कहा सुनत विपरीत लोक मैं यह सब कोई कैहै।
देखौ धौं अपनैं मन सब कोइ तुमहीं दूषन दैहै॥
चंदन अगरु सुगन्ध जे लेपत का विभूति तन छाजै।
'सूर' कहो सोभा क्यों पावै आँखि आँधरी आँजै॥

कहाँ लै कीजै बहुत लड़ाई।
अति अगाध स्रुति-वचन अगोचर मनसा तहाँ न जाई॥
रूप न रेख बरन वपु जाकै संग न सखा सहाई।
ता निरगुन सौं प्रीति निरन्तर क्यौं निबहै री माई॥
जल बिनु तरँग चित्र बिनु भीतिहिं बिनु चित ही चतुराई।
अब ब्रज मैं नइ रीति कछू यह ऊधौ आनि चलाई॥
मन चुभि रह्यौ माधुरी मूरति रोम रोम अरुझाई।
स्याम सुभग गन सुन्दर लोचन निरखि सूर बलि जाई॥

गोस्वामी तुलसीदास

जीवन-परिचय

जन्म सं० १५५४ राजापुर में। साकेतवास सं० १६८० काशी में।

हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान, समय आदि के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् १५८३ तो दूसरे १५८६ और अनेक समालोचक १५५४ में इनका जन्म स्वीकार करते हैं। मृत्यु तो इनकी निश्चित रूप में संवत् १६८० श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार को ही हुई थी। जैसा कि बाबा बेनी-माधव दास के 'गोसाईं-चरित' के निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

संवत सोलह से असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

तुलसीदास के अनन्य मित्र भदैनी गाँव के ठाकुर टोडर के वंशज अब भी श्रावण कृष्णा तृतीया ही को गोस्वामीजी के नाम पर सीधा दिया करते हैं।

अतः गोस्वामीजी की पुण्य तिथि श्रावण शुक्ला सप्तमी प्रत्युत श्रावण कृष्णा तृतीया शनिवार ही है। अब शेष रहा प्रश्न जन्म संवत् का, सो बाबा बेनीमाधवदास-कृत 'गोसाईं-चरित, और बाबा रघुवर दास-कृत 'तुलसी-चरित' में वर्णित संवत् १५५४ श्रावण शुक्ला सप्तमी ही प्रमाणित तिथि और संवत् हैं जैसा कि निम्न दोहे से स्पष्ट है :—

पन्द्रह से चव्वन विषे तरणितनूजा-तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी धर्‌यो शरीर॥

पर्याप्त ऊहापोह और आलोचना-प्रत्यालोचना करने के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गोस्वामीजी का जन्म अवश्य ही

उक्त संवत और तिथि को ही हुआ था। क्योंकि केवल मात्र इसी लिये कि १५५४ में जन्म मान लेने पर गोस्वामीजी की आयु १२६ वर्ष हो जाती है, १५८२ या ८६ में जन्म मानना उचित नहीं। गोस्वामीजी सरीखे वीतराग पवित्र आचरण वाले महापुरुष की इतनी आयु होना कोई बड़ी बात नहीं है।

इसके अतिरिक्त इनका जन्म १५८९ मान लेने पर मीराबाई का इन्हें पत्र लिखना असम्भव-सा जँचता है। किन्तु १५५४ में जन्म मान लेने पर यह घटना सर्वथा स्वाभाविक और सत्य सिद्ध होती है। अतः कह सकते हैं कि गोस्वामीजी के जन्म और मृत्यु की पूर्वोक्त तिथियाँ ही सर्वथा सत्य और प्रामाणिक हैं।

गंडमूल नक्षत्रों में उत्पन्न होने के कारण माता-पिता ने इन्हें जन्मते ही त्याग दिया था। इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का हुलसी था। महात्मा नरहरिदास ने इनका पालन-पोषण किया। तत्पश्चात् यह काशी चले गये और २५-३० वर्ष तक सभी शास्त्रों का व्यापक अध्ययन किया। तदनन्तर ये गृहस्थ आश्रम में प्रविष्ट हुए और अपनी पत्नी के प्रति इतने आसक्त रहने लगे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर ये भी पीछे हो लिये। इस पर उसने ऐसे मार्मिक वाक्य कहे कि जिनके प्रभाव से गोस्वामीजी मायापाश को तोड़ अनन्य भगवद्भक्त हो गये।

इस घटना के पश्चात् उन्होंने भारत के सभी तीर्थों की यात्रा की। तत्पश्चात् काशी के महान् पण्डित शेष सनातन से अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन किया। फिर अयोध्या तथा काशी में रहकर 'रामचरितमानस' की रचना की।

गोस्वामीजी भक्तशिरोमणि महाकवि तो थे ही, साथ ही सबसे बड़े सुधारक भी थे। उन्होंने शैवों और वैष्णवों का विरोध दूर किया, निर्गुन-पंथी कबीर आदि के द्वारा प्रचारित वेद-शास्त्रों की निन्दा और प्राचीन भारतीय संस्कृति के खंडनात्मक विषैले प्रभाव को अपनी अमृतमयी वाणी से दूर कर भारतीय जनता को फिर से वास्तविक धर्म का रूप दिखाया और वेद-शास्त्रों के प्रति श्रद्धा जागृत की। कृष्ण भक्तों द्वारा प्रचारित विलासिता की बाढ़ को रोककर कर्मयोग का प्रचार किया। इसके अतिरिक्त अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा संस्कृत, अवधी तथा व्रज तीनों भाषाओं में; प्रबन्ध, मुक्तक गीत, कवित्त, सवैये आदि सभी शैलियों में, भक्ति, वात्सल्य, करुण, वीर, शृङ्गार आदि सभी रसों और विषयों पर मनोहारिणी रचनाएँ लिख कर साहित्य और समाज की जो सेवा गोस्वामीजी ने की है, वह भारतीय साहित्य में चिरस्मरणीय रहेगी। गोस्वामीजी वस्तुतः हिन्दी-साहित्याकाश के सूर्य ही थे। उन्होंने लगभग २० पुस्तकें लिखीं जिनमें से निम्नलिखित अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—

१—रामचरितमानस। २—कवितावली। ३—गीतावली। ४—विनयपत्रिका। ५—कृष्ण-गीतावली। ६—दोहावली। ७—पार्वती-मङ्गल। ८—जानकी-मङ्गल।

मंथरा-कैकेयी-संवाद

नामु मन्थरा मन्दमति चेरी कैकेइ केरि।
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

देखि मन्थरा नगरु बनावा। मंजुल मङ्गल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू॥
करइ बिचारि कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवन बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँवतकइ लेउँ केहि भाँति॥
भरत मातु पहँ गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ न लेइ उसांसू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानी गालु बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वाँस कारि जनु साँपिनि॥

सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु॥
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु॥

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥
भयउ कौसलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकि रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुस्कानि ॥
प्रियबादिनि सिख दिन्हिउँ तोहीं। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोहीं ॥
सुदिनु सुमङ्गल-दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामी सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौ साँचेहुँ काली। देउँ मांगु मन भावत आली।
कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायं पियारी।
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी।
जौ बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू ॥
प्राण ते अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरे ॥
भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि, कारन मोहिं सुनाउ ॥
एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपार अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा ॥
कहहिं झूठि पुनि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिंन मौन रहब दिनराती ॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होबकि रानी ॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ताते कछुक बात अनुसारी। छमिअ देवि बड़ि चूक हमारी ॥
गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधर बुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि ॥

सादर पुनि पुनि पूँछत ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फावी॥
तुम्ह पूँछहु मैं कहत डराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहुविधि गढ़ि छोली। अवध साढ़साती तब बोली॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुर बानी॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूंधहु करि उपाउ बर बारी॥

तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ॥

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरत भूप ननिअउरे। राम-मात मत जानव रउरे॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके। गरवित भरत मातु बल पीके॥
सालु तुम्हार कौसलहि माई। कपट चतुर नहिं होइ जनाई॥
राजहिं तुम्ह पर प्रेमु विसेखी। सवति सुभाउ सकइ नहि देखि॥
रचि प्रपञ्च भूपहिं अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहिं सुठ नीका॥
आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥

रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहसि कथा शत सवति कै, जेहि विधि बाढ़ विरोधु॥

भावी बस प्रतीति उर आई। पूछि रानि पुनि सपथ दिवाई॥
का पूँछहु अबहुँ नहिं जाना। निज हित अनहितु पसु पहिचाना॥
भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहिं मन आजू॥

खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे। सत्य कहे नहिं दोष हमारे॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई॥
रामहिं तिलक कालि जौं भयऊ। तुम कहँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥
रेख खँचाइ कहउँ बल भाषी। भामिनि भइउ दूध कइ माखी॥
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥

कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख, तुमहिं कौसिला देव।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं, लखनु राम के नेब॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥
सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहिं मोह बस अपने॥
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥

अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहिं बार मोहिं, दैव दुसह दुखु दीन्ह॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहिं जीवन चाही॥
दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरी तियमाया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना॥
जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥

पूँछेउँ गुनन्हि रेख तिन्ह खाची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरी सेवा बस राऊ॥

परउँ कूप तुअ वचन पर, सकउँ पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि॥

कुबरी करि कुबली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥
लखत न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन बलिपशु जैसे॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहिं बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूपति राम सपथ जब करई। तब मांगेहु जेहिं बचनु न टरई॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानेहु जीते।

बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहि सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी।
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कर भइसि अधारा
जौ विधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चख पूतरि आली॥
बहुविधि चेरिहिं आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥
बिपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकेई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

राम-धाम

जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभगि सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरश जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सिंधु सरित सर वारी। रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

यश तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुक्ताहल गुन गन चुनई, राम बसहु मन तासु॥

प्रभु प्रसाद शुचि सुभग सुवासा। सादर जासु लहहिं नित नासा॥
तुमहिं निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥
सीस नवहिं सर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विशेखी॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ जल जाहीं। राम बसहु तिनके मन माहीं॥
मंत्रराज नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुमहिं सहित परिवारा॥
तर्पण होम करहिं विधि नाना। विप्र जिमाइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह ते अधिक गुरहिं जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥

सब कर मागहिं एक फल, राम चरण रति होइ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोइ॥

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह के कपट दम्भ नहिं माया। तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रशंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय वचन विचारी। जागत सोवत शरण तुम्हारी॥

तुमहिं छाँड़ि गति दूसरी नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥
जननी सम जानहिं पर नारी। धन पराय विष ते विष भारी॥
जे हर्षहिं पर सम्पति देखी। दुखित होहिं पर विपति विशेखी॥
जिनहिं राम तुम प्राण पियारे। तिन्ह के मन शुभ सदन तुम्हारे॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिनके सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात॥

अवगुण तजि सबके गुण गहहीं। विप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुण जिन्ह के जग लीका। घर तुम्हार तिन्हकर मन नीका॥
गुण तुम्हार समझै निज दोसा। जेहिं सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भक्त प्रिय लागहिं जेही। तेहिं उर बसहु सहित वैदेही॥
जाति पाँति धन धर्म बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहिं रहै लव लाई। तेहिं के हृदय रहहु रघुराई॥
सर्ग नर्क अपवर्ग समाना। जहँ तहँ देख धरे धनु बाना॥
कर्म वचन मन राउर केरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्हँ सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेह॥

राम-राज्य

राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥
चारिउँ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परमगति के अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुन्दर सब विरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दम्भ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य सब पंडित ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

राम-राज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुण, कृत दुख काहुहि नाहिं॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह कछु प्रभुता बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि एहि चरित तिनहुँ रति मानी॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दमसीला॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक संग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

कूजहिं खग मृग नाना वृन्दा। अभय चरहिं वन करहिं अनन्दा॥
सीतल सुरभि पवन वह मन्दा। गुञ्जत अलि लै चलि मकरन्दा॥
लता विटप मागे मधु चवहीं। मन-भावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि-सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइ कृत-जुग कै करनी॥
प्रगटीं गिरिन्ह विविध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल वहहिं वर वारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्नदस दिसा विभागा॥

विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनेहि काज।
मांगे वारिद देहिं जल रामचन्द्र के काज॥

कलि-महिमा

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सद्ग्रन्थ।
दंभिन्ह निज मति कल्प करि प्रगट किए बहु ग्रन्थ॥
भए लोग सब मोहवस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरिजान सुग्याननिधि, कहउं कछुक कलिधर्म॥

बरन धरम नहिं आस्रम-चारी। स्रुति विरोध-रत सब नर नारी।
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान-निगम-अनुसासन।
मारग सोइ जाकहँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥
मिथ्यारंभ दंभ-रत जोई। ताकहँ संत कहहिं सब कोई॥
सोइ सयान जो पर-धन-हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोइ गुनवन्त बखाना॥

निराचार जो स्रुति-पथ-त्यागी। कलियुग सोइ ग्यानी बैरागी॥
जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

असुभ बेष भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं॥
ते ही जोगी सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहिं॥
जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य बहु॥
मन क्रम बचन लबार ते बक्ता कलिकाल महँ॥

नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मरकट की नाईं॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना॥
सब नर काम-लोभ-रत क्रोधी। बेद-बिप्र-स्रुति-सन्त-बिरोधी॥
गुनमन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषनहीना। बिधवन्ह के स्रृंगार नवीना॥
गुरु-सिषि बधिर अंध का लेखा। एक न सुनहिं एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुरु घोर नरक महँ परई॥
मातु-पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरै सोइ धरम सिखावहिं॥

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी कारन लोभबस, करहिं बिप्र-गुरु घात॥
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हते कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर, आँखि देखावहिं डाटि॥

परत्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ज्ञानी नर। देखेउँ मैं चरित्र कलिजुग कर॥
आपु गए अरु औरनि घालहिं। जे कहि सत मारग प्रतिपालहिं॥
कल्प कल्प भरि एक-एक नरका। परहिं जे दूषहिं स्रुति करि तरका॥

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा॥
नारि मुई गृह संपति नासी। मूँड़ मुड़ाइ होहिं सन्यासी॥
ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृपली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥

भए बरन-संकर सकल भिन्नसेतु सब लोग।
करहिं पाप दुख पावहिं भय रुज सोक बियोग॥
स्रुति सम्मत हरिभक्ति पथ संजुत बिरत बिबेक।
तेहिं न चलहिं नर मोहबस कल्पहिं पंथ अनेक॥

बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन गई बिरती॥
तपसी धनवन्त दरिद्र गृही। कलिकौतुक तात न जात कही॥
कुलवन्त निकारहिं नार सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहिं मात पिता तबलौं। अबला नहिं डीठ परी जबलौं॥
ससुरारि पियारि लगी जबते। रिपुरूप कुटुम्ब भयौ तबतें॥
नृप पाप-परायन धर्म नहीं। करि दण्ड बिडम्ब प्रजा नितहीं॥
धनवन्त कुलीन मलीन अपी। द्विज चिह्न जनेउ उधार तपी॥
नहिं मान पुरानन्ह बेदहिं जो। हरिसेवक सन्त सही कलि सो॥
कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन-दूषन ब्रात न कोपि गुनी॥
कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिन अन्न दुखी सब लोग मरै॥

सुनु खगेस कलि कपट हठि, दम्भ द्वेष पाखण्ड।
मान मोह मारादि व्यापि रहे ब्रह्मण्ड॥

तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान।
देव न बरषहिं धरनि पर बये जामहि धान॥

अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोर न कोमलता॥
नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारनहीं॥
लघु जीवन संवत पंचदसा। कलपांत न नास गुमान असा॥
कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत को अनुजा तनुजा॥
नहिं तोष विचारन सीतलता। सब जाति कुजात भए मँगता॥
इरषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥
सब लोग बियोग बिसोक हुए। बरनास्रम धर्म अचार गए॥
दम दान दया नहिं जानपनी। जड़ता पर बंचनतार्ति घनी॥
तनुपोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे॥

सुनु ब्यालारि कराल कलि मल अवगुन आगार।
गुनहु बहुत कलिजुग करि बिनु प्रयास निस्तार॥

यज्ञ-रक्षा

ऋषि सँग हरषि चले दोउ भाई।
पितु पद बन्दि सीस, लियो आयसु, सुनि सिख आसिष पाई॥
नील पीत पाथोज बरन बपु बय किसोर बनि आई।
सर धनुपानि, पीत पट कटितट, कसे निखंग बनाई॥
कलित कंठ मनि माल, कलेवर चन्दन खौरि सुहाई।
सुन्दर बदन, सरोरुह लोचन, मुखछबि बरनि न जाई॥

पल्लव, पंख, सुमन सिर सोहत क्यों कहौं बेष-लुनाई ।
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुन्दरताई ॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग-मृग बन रुचिराई ।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि लेत बुलाई ॥
एक तीर तकि हती ताड़का विद्या विप्र पढ़ाई ।
राख्यो जग्य जोति रजनीचर, भइ जग-विदित बड़ाई ॥
चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई ।
तुलसीदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ॥

दोउ राजसुवन राजत मुनि के सङ्ग ।
नखसिख लोने, लोने वदन, लोने लोचन, दामिनि-वारिद बरबरन अङ्ग ॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपवीत पीत पट, धनु-सर कर, कसे कटि निखंग ।
मानो मख-रुज निसिचर हरिबेको सुत पावक के साथ पठये पतंग ॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छवि बरनत अतुलित अनंग ।
तुलसी प्रभु विलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेम-मगन रँगे रूप-रंग ॥

  

कौशल्या की चिन्ता

मेरे बालक कैसे धौं मग-निवहहिंगे ?
भूख, पियास, सीत, स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहिं कहहिंगे ?
को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ, निछावरि करि लोचन-सुख लैहै ?
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु-परिजन-महतारी।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर, मारन, मख रखवारी॥
सुन्दर सुठि सुकुमार सुकोमल, काक-पच्छ-धर दोऊ।
तुलसी निरखि हरषि, उर लैहौं विधि ह्वै है दिन सोऊ॥

जबतें लै मुनि संग सिधाए।
राम-लखन के समाचार, सखि! तबतें कछुअ न पाए॥
बिनु पनही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं।
सर-सरिता जलपान सिसुन के अंग सुसेवक नाहीं॥
कौसिक परम कृपालु, परमहित समरथ सुखद सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि आली॥
बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह-बस रानी।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल बानी॥

* * *

श्रीकृष्ण की बाल-लीला

मोकहू झूँठहिं दोष लगावहिं।
मैया इनहिं बानि पर गृह की, नाना युक्ति बनावहिं॥
इन्ह के लिये खेलबो छॉड्यो, तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि बोरिकर गोरस, देन उलहनों आवहिं॥
कबहुँक बाल रुवाइ पानि गहि मिस, यहि करि उठि धावहिं।
करहिं आपु शिर धरहिं आन के, वचन विरंचि हरावहिं॥
मेरी टेव बूझ हलधर सों, संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहू को, ते शिशु मोहि न भावहिं॥
सुनि सुनि वचन चातुरी, ग्वालिनि हँसि हँसि वदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि कलि कीरति, 'तुलसीदास' मुनि गावहिं॥

अवहिं उरहनो दै गई बहुरि फिरि आई।
सुनु मैय्या तेरी सौं याकी लरन की सकुच बेंचेसि खाई॥
या ब्रज मे लरिका, घने हौंही अन्याई।
मुँह लाए मूडहि चढ़ी अंतहु, अहिरिनि तोहि सूधी करि पाई॥

छोड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहै देखु कालि तेरे वै, व्याह की बात चलाई॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि, हँसि हैं नई दुलहिआ सुहाई।
उबटि नहाहु गुहों चुटिया वलि देखौं, भलो वर करहिं बड़ाई॥
मातु कह्यो कर कहत बोलि दै भइ, बड़िवार कालि तो न आई।
जब सोइबो तात यों हॉ कहि, नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥

उठि कह्यो भोर भयो झंगुली दै, मुदित महर लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जान 'तुलसी' प्रभु, सकुचि लगे जननी उर धाई॥

राम-विवाह

नगर निसान वर बाजैं, व्योम दुंदुभी,
विमान चढ़ि गान कै कै सुरनारि नाचहीं।
जय जय तिहुँ पुर, जयमाल राम उर,
बरषैं सुमन सुर, रूरे रूप राचहीं॥
जनक को पन जयौ, सब को भावतो भयौ,
तुलसी मुदित रोम रोम मोद माचहीं।
सांवरो किसोर, गोरी सोभा पर तृण तोरि,
"जोरी जियौ जुगजुग" सखीजन जाँचहीं॥
दूलह श्री रघुनाथ बने, दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद, जुवा जुरि विप्र पढ़ाहीं॥
राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥

  

वनवास

सिथिल सनेह कहै कौसिला सुमित्राजु सों,
मैं ना लखी सौति, सखी! भगिनी ज्यों सेई है।
कहैं मोहिं मैया, कहौं "मैं न मैया भरत की,
बलैया लैहौं, भैया! तेरी मैया कैकेयी है"॥

'तुलसी' सरल भाय रघुराय माय मानी;
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
बाम विधि मेरो सुख सिरिस-सुमन सम,
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है॥
"कीजै कहा, जीजी जू!" सुमित्रा परि पांय कहै,
'तुलसी' सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसे चहियतु है॥
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर मांह,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहु पर बाहु बिनु राहु गहियतु है॥

पुर तें निकसी रघुवीर-वधू, धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिर बूझति है "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै?"
तिय की लख आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चली जलच्वै॥

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरछी सी भौहैं।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग मे सुठि सौहैं॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्राम बधू सिय सों "कहौ साँवरे से. सखि रावरे कोहैं?"
सुनि सुन्दर बैन सुधा-रस-साने, सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसकाइ चली॥

तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज कली॥

सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासर सायक लै।
बन खेलत राम फिरे मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै?
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगै, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है॥

—:※:—

रहीम

जीवन-परिचय

जन्म सं १६१० देहली मे ।   मृत्यु सं० १६८२ चित्रकूट में ।

अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना सम्राट् अकबर के अभिभावक बैरमखाँ के सुपुत्र थे। ये अकबर के नवरत्नों में से एक और सेनापति थे। पश्चात् प्रधानमन्त्री-पद पर प्रतिष्ठित हुए। ये जितने बडे विद्वान् कवि थे, उतने ही बडे शूरवीर तथा उदार व दानी भी थे। विद्वत्ता, वीरता और उदारता—इन तीनों गुणों का एकत्र समावेश रहीम को छोड़ हमें अन्य किसी भी हिन्दी कवि मे नहीं मिलता। क्योंकि ये अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत, व्रज, अवधी और खडी बोली आदि अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे, अत इन सभी भाषाओं में इन्होंने अत्यन्त मार्मिक और सरस रचनाएँ लिखी हैं।

इनकी उदारता का परिचय—

तब ही लग जीवो भलो, दीवो परै न धीम ।
बिन दीवो जीवो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥

दि पदों से तो मिलता ही है। साथ ही इसका क्रियात्मक प्रमाण भी है कि केवल दो छन्द सुनकर इन्होंने गंग कवि को छत्तीस ख रुपया पारितोषिक दे डाला था। इतने पर भी दान देते समय अपनी आँखें सदा नीची रखा करते थे, इसलिए गंग ने इनसे ा कि—

सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी दैन ।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो करो, त्यों त्यों नीचे नैन ॥

इस पर रहीम ने उत्तर दिया कि—

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन ॥

अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर ने राज-विद्रोह के अभियोग में इन्हें कैद कर लिया और सारी सम्पत्ति भी छीन ली। कैद से छूटकर ये एक दरिद्र की भाँति चित्रकूट पर दिन विताने लगे। अपनी इस दरिद्रावस्था का इन्होंने बहुत सुन्दर और करुणाजनक वर्णन—

अब रहीम घर घर फिरे माँगि मधुकरी खाहिं ।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वह नाहिं ॥

आदि कई दोहों में किया है।

रहीम मुसलमान होते हुए भी हृदय से सच्चे हिन्दू और अनन्य भक्त थे। 'धूर धरत निज शीश पै' आदि दोहे इनकी रामभक्ति का अत्युत्कृष्ट उदाहरण हैं। इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने जो-कुछ लिखा है, वह सुना-सुनाया न होकर अपने जीवन के अनुभव के आधार पर लिखा है। इसीलिए इनका प्रत्येक दोहा या पद अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली बन पड़ा है। शायद ही कोई हिन्दी-भाषी हो जिसकी जिह्वा पर कोई-न-कोई रहीम का दोहा विराजमान न हो।

ये गोस्वामी तुलसीदास जी के अनन्य मित्र व भक्त भी थे। जैसा कि पहले कह चुके हैं, इन्होंने अरबी, फारसी, संस्कृत, हिन्दी आदि अनेको भाषाओं मे तथा शृङ्गार, भक्ति, नीति, ज्योतिष आदि अनेकों विषयों पर बड़ी सुन्दर रचनाएँ लिखी हैं। इस प्रकार अनेक भाषाओं में लिखने वाले ये हिन्दी के एक-मात्र कवि हैं। इनकी (१) रहीम सतसई (२) मदनाष्टक (३) बरवै नायिका-भेद (४) खेट कौतुकम् (५) शृङ्गार सोरठा आदि पुस्तके प्रसिद्ध हैं।

— ❀ —

सूक्ति-सुधा

अच्युत - चरण - तरंगिनी, सिव - सिर - मालति - माल।
हरि न बनाओ सुर-सरी, कीजो इन्दव-भाल॥
जिहि 'रहीम' चित आपनो, कीन्हों चतुर चकोर।
निसि-बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर॥
सब कोऊ सब सों करैं, राम-जुहारु सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम॥
जो 'रहीम' करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ नाहक कर पर धर्‌यो, गोवर्धन गोपाल॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोइ।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीन बन्धु सम होइ॥
कमला थिर न 'रहीम' कहि, यह जानत सब कोइ।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होइ॥
छोटे काम बड़े करैं, तो न बड़ाई होइ।
ज्यों 'रहीम' हनुमन्त कहँ, गिरधर कहे न कोइ॥
'रहिमन' मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होइ॥
ये 'रहीम' घर घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं॥
दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों 'रहीम' नट कुंडली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥

तब ही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै 'रहीम'॥

जो 'रहीम' ओछो बढ़े, तौ अति ही इतराइ।
प्यादे से फरजी भयो, टेढो टेढ़ो जाइ॥

आपु न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरै, 'रहिमन' कूर बबूर॥

'रहिमन' अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

'रहिमन' मन महराज के, दृग सों नाहिं दिवान।
देखि जाहि रीझै नयन, मन तेहि हाथ बिकान॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
'रहिमन' मछरी नीर को, तऊ छाँडति छोह॥

बढत 'रहीम' धनाढ्य धन, धनै धनी कहँ जाइ।
घटै बढ़ै तिन कर कहा, भीख माँगि जे खाइ॥

काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
'रहिमन' भउँरिन के भये, नदी सिरावत मौर॥

कदली, सीप, भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई गुन दीन॥

सीत हरत तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
'रहिमन' तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक॥

यों रहीम सुख होत है, उपकारी के संग।
बाँटन वारे के लगै, ज्यों मेहदी को रंग॥

'रहिमन' करि सम बल नहीं, मानत प्रभु कै धाक।
दांत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक॥
जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं, यह जानत सब कोय।
मड़ये-तर कै गाँठि में, गाँठि गाँठि रस होय॥ ५
'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाड़ति साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥
अनुचित बचन न मानिये, जदपि गुरायसि गाढ़ि।
है 'रहीम' रघुनाथ ते, सुजस भरत को बाढ़ि॥
चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेइ।
ज्यों 'रहीम' आटा लगै, त्यों मृदंग सुर देइ॥
'रहिमन' गलि है साँकरी, दूजौ ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपन नाहिं॥
'रहिमन' व्याह वियाधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय॥
माह मास कर मिनुसरा, मीन सुखी नहिं सौर।
ज्यों 'रहीम' जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर॥
'रहिमन' आटा के लगे, बाजत है दिन रात।
घिउ सक्कर जे खात है, तिन के कहा बिसात॥
'रहिमन' रहिबो वाँ भलो, जो लौ सील समूच।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिये कूच॥
'रहिमन' विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
जनम वृथा भू पर धरेउ, पसु बिनु पूँछ बिपान॥

'रहिमन' खोटी आदि कै, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल बमन कराय॥
जब लगि वित्त न आपुनो, तब लगि मित्र न कोइ।
'रहिमन' अम्बुज अम्बु बिनु, रवि ताकर रिपु होइ॥
मान सहित विष खाय कै, सम्भु भये जगदीस।
बिन आदर अमृत भख्यो, राहु कटायो सीस॥
भलो भयो घर ते छुट्यो, हस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अधम पेट के हेत॥
जो 'रहीम' गति दीप की, सुत सपूत की सोइ।
बड़ो उजेरो तेहि रहै, गये अन्धेरो होइ॥
जलहि मिलाय 'रहीम' ज्यों, कियो आप सम छीर।
अंगवहि आपुहि आपु लखि, सकल आँच कै भीर॥
'रहिमन' मैं या पेट सों, बहुत कहेउँ समझाइ।
जो तू अनखाये रहै, कब कोऊ अनखाइ॥
'रहिमन' घरिया रहँट कहँ, त्यों औछे कै डीठि।
रीतिहि सन्मुख होति है, भरी दिखावैं पीठि॥
खर्च बढ़यो उद्यम घटौ, नृपति निठुर मन कीन।
कहु 'रहीम' कैसे जिये, थोरे जल के मीन॥
उरग तुरग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
'रहीम' इन्हें सँभारिये, पलटत लगे न वार॥
पसरि पत्र झँपहि पितहि, सकुचि देत ससि सीत।
कह 'रहीम' कुल कमल के, को बैरी को मीत॥

चरन छुये मस्तक छुए, तऊ न छाड़त पानि ।
हियौ छुवत प्रभु छाड़ि दे. कहु 'रहीम' का जानि ॥
टूटे सुजन मनाइये, जौ टूटे सौ वार ।
'रहिमन' फिरि-फिरि पोहिये, टूटे मुकताहार ॥
'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग-पताल ।
आपु तो कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥
बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल ।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥
मनि मानिक महँगे किये, ससते तन जल नाज ।
'रहिमन' याते कहत हैं, राम गरीबनेवाज ॥
खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
आजि काल्हि मोहन गही, बंस दिया के रीति ॥
कह 'रहीम' या जगत तें, प्रीति गई दै टेरि ।
अब 'रहीम' नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेरि ॥
निज कर क्रिया 'रहीम' कह, सुधि भावी के हाथ ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥
थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात
धनी पुरुष निरधन भये, करैं पीछली बात ॥
घर डर गुरु डर बंस डर, डर लज्जा डर मान
डर जेहि के जिय मे बसे, तिन पाया 'रहिमान' ॥
देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन-रैन ।
लोग भरम हम पर धरैं. याते नीचे नैन ॥

काह कामरी पामरी, जाड़े गये से काज ।
'रहिमन' भूख बुताइये, कैसेउ मिले अनाज ॥

'रहिमन' प्रीति न कीजिये, जस खीरा ने कीन ।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फांके तीन ॥

वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछलो हेत ।
घटत-घटत 'रहिमन' घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥

समय परे ओछे वचन, सब के सहउ 'रहीम' ।
सभा दुसासन पट गहे, गदा रहे गहि भीम ॥

सदा नगारो कूच कर, बाजत आठो जाम ।
'रहिमन' या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥

'रहिमन' मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन ।
बरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥

'रहिमन' पुतरी स्याम, मनो जलज मधुकर लसै ।
कैधौं सालिगराम, रूपे के अरघा धरे ॥

'रहिमन' जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में ।
ताहू में परतीन, जहाँ गाँठ तहाँ रस नहीं ॥

'रहिमन' नीर पखान, भीजै पै सीजै नहीं ।
तैसेइ मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥

बिन्दु सिन्धु समान, को कासों अचरज कहै ।
हेरन हार हिरान, 'रहिमन' आपुहि आपु में ॥

ओछे को सतसंग, 'रहिमन' तजहु अँगार ज्यों ।
तातो जारै अंग, सीरे पै कारो करै ॥

विधना यह जिय जानि कै, सेसहिं दिये न कान।
धरा मेरु सब डोलिहै, तान सेन के तान॥
जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।
'रहिमन' उतरे पार, भार झोंकि सब भार में॥

पेट चाहै अन्न, तन चाहत छदन,
मन चाहत है धन, जेति सम्पदा सराहिबी।
तेरोई कहाय कै, 'रहीम' कहै दीनबन्धु,
आपुन विपत्ति जाय, काके द्वार काहिबी।
पेट भर खायो चहै, उद्यम बनायो चहै,
कुटुम जियायो चहै काढ़ि गुन लाहिबी।
जीविका हमारी, जो पै औरन के कर डारी,
ब्रज के बिहारी, तौ तिहारी कहा साहिबी।

दीनै चहै करतार जिन्है सुख, कौन 'रहीम' सकै तिहिं टारे।
उद्यम कोउ करो न करो, धन आवत है बिन ताके हंकारे॥
देव हँसे सब आपुस में, विधि के परपंच कोऊ न निहारे।
बेटा भये वसुदेव के धाम औ, दुन्दुभी बाजत नन्द के द्वारे॥

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारो हम,
राखियो हमें तो शोभा रावरी बढ़ाइ हैं।
तजि हौ हरप बिरप है न चारौ कछु,
जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनी छवि पाइ हैं।
सुरन चढ़ेंगे सुर नरन चढ़ेंगे हम,
सुकवि 'रहीम' हाथ हाथ ही बिकाइ हैं।

देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे,
काहू भेष में रहेंगे पै रावरे कहाइ हैं।
बड़ेन सो जान पहिचान, तो 'रहीम' कहा,
जो पै करतार ही न सुखदेनहार है।
सीतहर सूरज सों प्रीति कर पंकज ने,
तऊ कंज-बनन जारत तुषार है।
उदधि के बीच बस्यो सङ्कर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो, ससि मे सदा रहै।
बड़े रिझवार हैं, चकोर दरबार देख्यो,
सुधाधर यार ए पै चुगत अंगार है।

छवि आवन मोहन लाल की।
लाल काछनी काछे कर मुरली पीत पिछौरी साल की ॥
वंक तिलक केसर के किये दुति मनो बिधु-बाल की।
विसरत नाहिं सखी मो मन ते चितवनि नयन विसाल की ॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की, छवि छिनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुक्ता-माल की ॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन गुपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस 'रहीम' के हाल की ॥

कमल-दल नैननि की उनमानि।
विसरत नाहिं सखी मो मन तें मन्द-मन्द मुसुकानि ॥
यह दसनन दुति चपला हू तें महा चपल चमकानि।
वसुधा की वसकरी मधुरता सुधापगी वतरानि ॥

रसखान

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६१५ देहली में   मृत्यु सं० १६६०

अनन्य कृष्ण-भक्त मुस्लिम कवि रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। ये शाही खानदान के थे, जैसा कि 'प्रेमवाटिका' में लिखा है—

देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादशाह वंश की ठसक छाँडि रसखान॥

ये बड़े भारी कृष्ण-भक्त और गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के अत्यन्त कृपापात्र शिष्य व आरम्भ से ही प्रेमी जीव थे। इनकी भाषा बड़ी ही सरल, सरस और शब्दाडंबर से रहित है। इनके सवैयों में प्रेम अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ प्रतीत होता है। इसीलिए जन-साधारण के प्रेम-सम्बन्धी कवित्त सवैयों को ही 'रसखान' कहने लगे। यद्यपि इनकी रचना परिमाण में स्वल्प ही है तथापि कृष्ण-भक्त प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाली है। अन्यान्य कृष्ण-भक्त कवियों ने गीत लिखे हैं। परन्तु इन्होंने अपनी कविता के लिए कवित्त-सवैयों का आश्रय लिया है। अनुप्रास की सुन्दर लय से युक्त चुस्त और मनोहर भाषा में प्रेम व भक्ति का सजीव-चित्र खींचने में तो रसखान अपने उपमान आप ही हैं।

इनकी दो रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं—१. सुजान रसखान, २. प्रेमवाटिका। सुजान-रसखान में १२० पद्य सवैया, घनाक्षरी छन्दों में हैं तथा कुछ एक दोहे-सोरठे भी हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं।

सरस-सवैये

कहा 'रसखानि' सुखसंपति सुमार कहा,
कहा महा जोगी ह्वै लगाये अङ्ग छार को।
कहा साधे पंचानल कहा सोये बीच जल,
कहा जीत लीने राज सिंधु आर पार को॥
जप बार बार तप संजम अपार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहिं प्यार सेयो दरबार, चित—
चाह्यौ न निहार्‌यो जौ पै नन्द के कुमार को॥

कंचन के मन्दिरनि दीठि ठहराति नाहिं,
सदा दीपमाल लाल-मानिक उजारे सौं।
और प्रभुताई सब कहाँ लौं बखानौं,
प्रतिहारन की भीर भूप टरत न द्वारे सौं॥
गङ्गा जी में न्हाइ मुक्ताहलहू लुटाई वेद—
बीस बेर गाइ ध्यान कीजत सकारे सौं।
ऐसे ही भये तो कहा कीन्हों 'रसखानि' जो पै,
चित्त दै न कीन्हीं प्रीति पीतपटवारे सौं॥

सुनिये सबकी कहिए न कछू रहिए इमि या भव-बागर में।
करिए व्रत नेम सचाई लिए, जिनतै तरिए भव-सागर में॥
मिलिए सब सों दुरभाव बिना, रहिए मतसंग उजागर में।
'रसखानि' गुविन्दहिं यों भजिए जिमि नागरि को चित गागर में॥

बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन वैन सों सानी।
हाथ वही उन गात परैं, अरु पाँय वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के सङ्ग, औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी॥

इक ओर किरीट लसै दुसरी दिसि, नागन के गन गाजत री।
मुरली मधुरी धुनि ओठन पे, उत डामर नाम सों बाजत री॥
'रसखानि' पितंबर एक कँधा पर एक बघंबर छाजत री।
अरी देखहु संगम लै बुड़की, निकसे यह भेख बिराजत री॥

यह देख धनूरे के पात चबात, औ गात सौं धूलि लगावत हैं।
चहुँ ओर जटा अँटकी लटकै, सुभ सीस फनी फहरावत हैं॥
'रसखानि' जेई चितव चित दै, तिनके दु.ख दुन्द भगावत हैं।
गज-खाल कपाल की माल बिसाल, सो गाल बजावत आवत हैं॥

बैद की औषधि खाइ नहीं, न करै वह संजम री सुन मोसें।
तेरोई पानी पियें 'रसखानि', सजीवन जानि लहैं सुख तोसें॥
ए री सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनें तुहि पोसें।
आक धतूरो चबात फिरैं, बिष खात फिरैं शिव तेरे भरोसें॥

द्रोपदी औ गनिका गज गीध, अजामिल जो कियो सो न, निहारो।
गौतम गेहनी कैसे तरी, प्रहलाद को कैसे हर्‍यो दुख भारो॥
काहे को सोच करे 'रसखानि', कहा करि है रबिनन्द बिचारो।
कौन की संक परी है, जु माखन, चाखनहारो सो राखनहारो॥

मानुष हौं तौ वही 'रसखानि', बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तौ कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥

पाहन हौं तौ वही गिरि को, जो धरयो कर छत्र पुरन्दर कारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं नित, कालिंदी कूल कदंब की डारन॥
जो रसना रस ना बिलसै; तेहि देहु सदा निज नाम उचारन।
जो कर नीकी करैं करनी, जुपै कुंज कुटीरन देहु बुहारन॥
सिद्धि समृद्धि सबै 'रसखानि', लहौं ब्रज रेणुका अंग सँवारन।
खास निवास मिलै जु पै तौ वहाँ, कालिंदी कूल कदंब की डारन॥
सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस, महेस, मनाओ।
कोऊ भवानी भजौ मन की, सब आस सबै विधि जाय पुराओ॥
कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूँ मन वांचित पाओ।
पै 'रसखानि' वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसाओ॥
या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्ध नवों निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
रसखानि' कबौ इन आंखिन तै, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिनहूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥
आजु गई हुती भोरहिं हौ, रसखानि रई कहि नन्द के भौनहिं।
वाको जियौ जुग लाख करोर, जसोमति को सुख जात कह्यो नहीं।
तेल लगाइ, लगाइ कै अंजन, भौंह बनाइ, बनाइ डिठौनहिं॥
डारि हमेल निहारति आनन, वारति ज्यों चुचकारति छौनहिं।
धूर भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अंगना, पग पैजनियां कटि पीरी कछोटी।
वा छवि को रसखानि विलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी॥

अपनो सो ढोटा हम सबही को जानत है,
दोऊ प्रानी सबही के काज नित धावहीं।
ते तौं 'रसखानि' अब दूर ते तमासो देखैं,
तरनि-तनूजा के निकट नहिं आवहीं॥
आये दिन बात अनहितुन सौं कहौं कहा,
हितु जेऊ आये तेऊ लोचन दुरावहीं।
कहा कहौं आली खाली देत सब ताली,
हाय मेरे बनमाली कौं न कीली ते छुड़ावहीं॥

सेस गनेस महेस दिनेस, सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद सै सुक व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पर पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौ पुरानन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ, वह कैसे सरूप औ' कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्यो, रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुरो वह कुञ्ज कुटीर मे, बैठो पलोटत राधिका पायन॥

ग्वालन संग जैबो औ चरैबो गाय उनही संग,
हेरि तान गैबो सोचि नैन फरकत हैं।
ह्या के गजमुक्तामाल वारों गुंजामालनि पै,
कुञ्ज सुधि आये हाय प्रान धरकत हैं।
गोबर को गारो सु तौ मोहिं लगै प्यारो,
नाहिं भावै ये महल जे जटित मरकत हैं।

मन्दर ते ऊँचे कहा मन्दिर है द्वारिका के,
ब्रज के खिरक मेरे हिये खरकत हैं ॥
'गोरज विराजै भाल लहलही वनमाल,
आगे गैया पाछे ग्वाल गावै मृदु तान री ।
जैसी धुनि बाँसुरी की मधुर मधुर, तैसी,
बंक चितवनि मंद मंद मुसकान री ॥
कदम्ब बिटप के निकट तटिनी के तट,
अटा चढ़ि देखे पीतपट फहरानि री ।
रस बरसावै तन तपन बुझावै, नैन,
प्राननि रिझावै वह आवै 'रसखानि' री ॥

आयो हुतो नियरे 'रसखानि', कहा कहूँ तू न गई वह ठैयाँ ।
या ब्रज की वनिता जिहिं देखिकै, वारहिं प्राननि लेहिं बलैयाँ ॥
कोऊ न काहू की कानि करै, कछु चेटक सो जु कर्‌यो जदुरैया ।
गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ॥

कानन दै अँगुरी रहिहौं, जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै ।
सोहनी तानन सों 'रसखानि', अटा चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै ॥
टेरि कहौं सिगरे ब्रजलोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै ।
माई री वा मुख की मुसकान, सम्हारि न जैहै न जैहै न जैहै ॥

मोरपखा सिर ऊपर राखि हौं, गुञ्ज की माल गले पहिरौंगी ।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी, बन गावत गोधन संग फिरौंगी ॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि सो, तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी ।
पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी ।

आजु अली इक गोपलली, भई बावरी नेकु न अङ्ग संभारै ।
मात अघात न देवन पूजत, सासु सयानी सयानी पुकारै ॥
यों 'रसखानि' घिर्‌यो सिगरो ब्रज, आन को आन उपाय विचारै ।
कोऊ न कान्हर के कर ते, वह बैरिन बाँसुरिया गहि जारै ॥

जल की घट न भरै, मग की न पग धरै
घर की न कछु करै, बैठी भरै सासु री ।
एकै सुनि लोट गई, एकै लोटपोट भई,
एकनि के दृगनि निकसि आए आंसुरी ॥
कहै 'रसखानि' सों सबै ब्रजबनिता बिधि,
बधिक कहाये हाय हुई कुल हांसु री ।
करिये उपाय बांस डारिये कटाय,
नाहिं उपजैगी बास नाहिं बाजै फेरि बांसुरी ॥

कौन ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ के बाँसुरिया रंग भीनी ।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं, तबहीं तित लाज बिदा करि दीनी ॥
घूमै घरी घरी नन्द के द्वार, नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी ।
या ब्रजमंडल मैं 'रसखानि' सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी ॥

दूध दुह्यो सीरो पर्‌यो तातो न जमायो बीर,
जामन दयो सो धर्‌यो धर्‌योई खटाइगो ।
आन हाथ आन पांय सबही के तबही ते
जबही ते 'रसखानि' तानन सुनाइगो ॥
ज्यों ही नर त्यों ही नारी तैसोई तरुन बारो,
कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो ।
जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को,
बांसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥

—·—

केशव

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६१२। मृत्यु सं० १६७३।

महाकवि केशव प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० काशीनाथ के पुत्र थे और ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के आश्रय में रहते थे। ये काव्य में अलंकार का स्थान मुख्य मानने वाले चमत्कारवादी कवि थे, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है.—

जदपि सुजाति सुलच्छिनी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण विनु न विराजई, कविता, वनिता, मित्त ॥

केशव कवि तथा आचार्य भी थे। उन्होंने संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पांडित्य व रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है। इनके संवादों में पात्रों के अनुकूल क्रोध, उत्साह आदि की व्यंजना भी बड़ी प्रभावपूर्ण और हृदयहारिणी हुई है। वाक्-पटुता और राजनीतिक दावपेंच का आभास भी प्रभावोत्पादक है। रावण-अङ्गद-संवाद, लवकुश-संवाद तथा युद्ध-वर्णन इनके एक दृष्टि से तो तुलसी से भी बढ़कर है। यद्यपि इनकी अनेक कविताएँ अन्य कवियों की भाँति सुनते ही तत्काल समझ में नहीं आतीं, उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु जितना हीं अधिक विचारिए उतना ही मिठास भी बढ़ता जाता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। इनकी रामचन्द्रिका एक सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है, जिसमे विभिन्न छन्दों में रामकथा कही गई है। जन-सामान्य में इसका प्रचार भले ही 'मानस' के समान नहीं हो पाया। तथापि विद्वत्ता व पांडित्य की दृष्टि से इसका पर्याप्त आदर हुआ है। इनकी ये रचनाएँ प्रसिद्ध हैं —

(१) रामचन्द्रिका (२) कविप्रिया (३) रसिकप्रिया (४) विज्ञान-गीता (५) वीरसिंहदेव-चरित (६) जहाँगीर-जसचन्द्रिका आदि।

श्रीरामचन्द्रिका : सत्रहवाँ प्रकाश

अङ्गद लै वा मुकुट को, परे राम के पाइ।
राम विभीषण के शिरसि, भूषित कियो बनाइ॥

दिशि दक्षिण अङ्गद पूर्व नील, पुनि-हनुमंत पच्छिम शत्रुशील।
दिशि उत्तर लक्ष्मण-सहित राम, सुग्रीव मध्य कीन्हे विराम॥
सँग लेकर युत्थप-बल-विलास, पुर फिरत विभीषण आसपास।
निसि बासर सब को लेत सोधु, यहि भाँति भयो लंका निरोधु॥
जब रावण सुनि लंका निरोधु, तब उपजो तन मन परम क्रोधु।
राख्यो प्रहस्त हठि पूर्व पौरि, दक्षिणहि महोदर गयो दौरि॥
भो इन्द्रजीत पच्छिम दुवार, है उत्तर रावण-बल उदार।
किय विरूपाक्ष थित मध्यदेश, कर नरान्तक चहुँधा प्रवेश॥
अति द्वार द्वार मँह युद्ध भये, बहु ऋक्ष कँगूरनि लागि गये।
तब स्वर्ण-लंक मह शोभ भई, जनु अग्नि ज्वाल बहँ धूममई॥

मरकत मणि से शोभिजैं, सबै कँगूरा चारु।
आय गयो जनु घात को, पातक को परिवारु॥

तब निकलो रावण-पुत सूरो, जेइ रण जीत्यो हरि-बल पूरो।
तब-बल माया-नम उपजायो, कपि-दल के मन संभ्रम छायो॥
काहु न देखि परै वह योधा, यद्यपि है सिगरे बुधि-गोधा।
सायक सो अहिनायक साँध्यो, सोदर स्यों रघुनायक बाँध्यो॥

रामहिं बाँधि गयो जब लंका, रावण की सिगरी गइ शंका
देखि बँधे तब सोदर दोऊ, यूथप यूथ नसे सब कोऊ।
इन्द्रजीत तेइ लै उर लायो, आजु काम सब मो मन भायो
कै विमान अधिरूढ़ित धायो जानकीहिं रघुनाथ दिखायो।
राजपुत्र युत-नागिनि देख्यौ, भूमि-पुत्रि तरु चन्दन लेख्यौ
पन्नगारि - प्रभु पन्नगसाईं, काल-चाल कछु जानि न जाई।

काल सर्प के कवल ते, छोरत जिनको नाम।
बँधे ते ब्राह्मण-वचन वश, माया सर्पहिं राम॥

पन्नगारि तबहीं तहँ आये, व्याल जाल सब मारि भगाये।
लङ्कमाँक तबहीं गई सीता, सुभ्र देह अवलोकि सुगीता॥

गरुड़.—

श्री राम नारायण लोककर्ता, ब्रह्मादि रुद्रादिक दु:ख हर्ता।
सीतेश मोको कछु देहु शिक्षा, नान्हीं बड़ी ईश जू होइ इच्छा॥

राम —

कीन्हो हुतो काज सबै सु कीन्हों, आये इतै मो कहँ सुक्ख दीन्हों।
पाँ लागि वैकुण्ठ-प्रभा विहारी, स्वर्लोक गो तत्क्षण विष्णुधारी॥
धूम्राक्ष आया जनु दंडधारी, ताको हनूमंत भयो प्रहारी।
जिते अकंपादि बलिष्ट भारे, संग्राम में अङ्गद वीर मारे॥
अकंप धूम्राक्षहिं जानि जूझ्यो, महोदरै रावण मंत्र बूझ्यो।
सदा हमारे तुम मन्त्रवादी, रहे कहा ह्वै अति ही विषादी॥
कहै जो कोऊ हितवन्त बानी, कहौं मो तासों अति दुखदानी।
गनै न दावै बहुधा डुरावै, सुखी तबै साधत मौन भावै॥

कह्यो शुक्राचार्य सु हौ कहौं जू, सदा तुम्हारे हित संग्रहौ जू।
नृपाल भू में विधि चारि जानौ. सुनो महाराज सबै बखानौं॥
यहै लोक एकै सदा साधि जानै, बली बेनु ज्यों आपुही ईस मानैं।
करै साधना एक पर्लोक ही को, हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को॥
दुहूँ लोक को एक साधैं सयानै, विदेहीन ज्यों वेद वाणी बखानै।
नठै लोक-दोऊ हठी एक ऐसे, त्रिशंकै हँसै ज्यो भलेऊ अनैसे॥

चहूँ राज को मैं कह्यौ, तुमसों राज चरित्र।
रुचै सु-कीजै चित्त में, चितहु मित्र अमित्र॥
चारि भाँति मन्त्री कहे, चारि भाँति के मन्त्र।
मोहि सुनायो शुक्र जू, सोधि सोधि सब तन्त्र॥

एक राज के काज हतैं निज कारज काजे,
जैसे सुरथि निकारि सबै मन्त्री सुख साजे।
एक राज के काज आपने काज बिगारत,
जैसे लोचन हानि सही कवि बलहिं निवारत।
इक प्रभु समेत अपनो भलो करत दासरथि दूत ज्यो,
इक अपनो अरु प्रभु को बुरो, करत रावरो पूत ज्यो।

मन्त्र जु चारि प्रकार के, मन्त्रिन के जे प्रमान।
विष से दाड़िम बीज से, गुड़ से नींब समान॥

राज-नीति मत तत्व समझिये, देस-काल गुनि युद्धि अरुझिये।
मंत्री मित्र अरि को गुण गहिये, लोक सोक अपलोक न वहिये॥
चारि भाँति नृप जो तुम कहियो, चारि मंत्रि मत मैं मन गहियो।
राम मारि सुर एक न बचि है, इन्द्रलोक बसोबासहिं रचि हैं॥

उठि कै प्रहस्त सजि सैन चले, बहु भाँति जाय कपि-पुंज दले।
तव दौरि नील उठि मुष्टि हन्यो, असुहीन गिर्‌यो भुव मुंड सन्यों॥
महावली जूझत ही प्रहस्त को, चल्यो तहीं रावण मीड़ि हस्त को।
अनेक भेरी बहु दुंदुभी बजैं, गयंद क्रोधान्ध जहाँ तहाँ गजैं॥
सनीर जीमूत-निकाश सोभहीं, विलोकि जाको सुर-सिद्ध छोभहीं।
प्रचंड नैऋत्य-समेत देखिये, सप्रेत मानो महाकाल लेखिये॥
कोदंड मंडित महारथवंत जो है, सिंहध्वजा समर पंडित वृन्द मोहै।
जोधा वली प्रवल काल कराल नेता, सो मेघनाद सुरनायक युद्ध जेता॥
जो व्याघ्र-चेप रथ व्याघ्रहि केतुधारी, आरक्तलोचन कुवेर विपत्तिकारी
लीन्हे त्रिसूल सुरसूल समूल मानो, श्रीरावणेंद्र अतिकाय वहै सु जानो
जो काचनीय रथ शृङ्गमयूरमाली, ताकी उदग्र उर षण्मुखशक्तिसाली
स्वर्धाम हर कीरति कै न जानी, सोई महोदर वृकोदर वंधुमानी॥

जाके रथाग्र पर सर्पध्वजा विराजै।
श्री सूर्य मंडल विडंवन ज्योति साजै॥
आखंडलीय वपु जो तनत्राण धारी।
देवातकै सु सुरलोक विपत्तिकारी॥

जो हंसकेतु भुजदंड निषंगधारी, सग्राम-सिंधु बहुधा अवगाहकारी।
लीन्हीं छँडाय जेहिदेव अदेववामा, सोई खरात्मजवली मकराक्षनामा

लगी स्यंदनै वाजि राजि विराजै।
जिन्है देखि कै पौन को वेग लाजै॥
भले स्वर्ण के किंकनी यूथ वाजै।
मिले दामनी सों मनो मेघ गाजै॥

पताका बन्यो शुभ्र शार्दूल सोभै।
सुरेन्द्रादि रुद्रादि को चित्त छोभै॥
लसै छत्रमाला हँसै सोमभा को।
रमानाथ जानो दसग्रीव ताको॥
पुरद्वार छॉड्यो सबै आपु आयो, मनो द्वादशादित्य को राहु धायो॥
गिरि-ग्राम लै लै हरि-ग्राम मारैं, मनो पद्मनी पद्म दंती विहारैं॥
देखि विभीषण को रण रावण शक्ति गही कर रोष रई है।
छूटत ही हनूमंत सो बीचहिं पूंछ लपेटि के डारि दई है॥
दूसरि ब्रह्म की शक्ति अमोघ चलावत ही हाइ हाइ भई है।
राख्यो भले शरणागत लक्ष्मण फूलि कै फूल सी ओढ़ि लई है॥
जोर ही लक्ष्मणै लेन लाग्यो जहीं।
मुष्टि छाती हनूमंत मार्‌यो तहीं॥
असुही प्राण कों नाश सो ह्वै गयो।
दंड द्वै तीनि में चेत ताको भयो॥
आयो डर भ्राणन, लै धनु बाणन, कपि दल दियो भगाय।
चढ़ि हनूमंत पर, रामचन्द्र तव रावण रोक्यो जाय॥
धरि एक बाण तब, सूत छत्र ध्वज, काटे मुकुट बनाय।
लागे दूजो सर, छूटि गयो बर, लंक गयो अकुलाय॥
यद्यपि है अति निर्गुणताई, मानुप देह धरे रघुराई।
लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो, नैनन ते न रह्यो जल रोक्यो॥
बारक लक्ष्मण मोहिं विलोको, मोकहँ प्राण चले तजि रोको।
हौं सुमरो गुण कौतुक तेरे, सोदर पुत्र सहायक मेरे॥

लोचन बान तुही धनु मेरो, तू बल विक्रम बारक हेरो।
तू बिनु हौं पल प्राण न राखौं, सत्य कहौं कछु झूठ न भाखौं ॥

मोहिं रही इतनी मन शंका, देन न पाई बिभीषण लंका।
बोलि उठौ प्रभु को पन पारौ, नातरु होत है मो मुख कारो ॥

मैं बिनऊँ रघुनायक करौ अब, देव तजो परदेवन को सब।
औषधि लै निसि में फिर आवहि, केसव को सब साथ लिवावहिं ॥

सोदर सूर को देसत ही मुख, रावण के सिगरे पुरवै सुख।
बोल सुने हनुमंत कर्‌यो प्रनु, कूदि गयो जहँ औषधि को बनु ॥

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट वसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गंधर्व-सर्व पसु ॥
बलित अबेर-कुबेर बलहिं गहि देऊँ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं-बिन सिद्धि सिद्ध सब ॥

निजु होई दासी दितिकी अदिति अनिल अनल मिट जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौ असुर संसार बल ॥

हन्यौं विघ्नकारी चली बीर बामैं, गयो शीघ्रगामी गये एक यामैं।
चल्यौ लै सबै पर्वत कै प्रणामैं, न जान्यो बिशल्यौषधी कौन तामैं ॥

लसैं औषधी चारु मो व्योमचारी, कहूँ देखियो देव देवाधिकारी।
पुरी भौम की सी लिए शीस राजै, महामंगलार्थी हनूमंत गाजै ॥

लगी शक्ति रामानुजै राम साथी, जड़ै ह्वै-गये ज्यों गिरैं हेम हाथी।
जिन्हें ब्याहिबे को सुनो प्रेमपाली, चल्यो ज्वालमालीहि लै कीर्तिमाली ॥

किधौं प्रात ही काल जी में विचार्‌यो।
चल्यो आशु ले अंशुमाली संहार्‌यो॥
किधौं जात ज्वालामुखी जोर कीन्हें।
महामृत्यु जामें मिटे होम कीन्हें॥

विना पत्र है यत्र पलाश फूले, रमैं कोकिलाली भ्रमें भौंर भूले।
सदानन्द रामैं महानन्द को लै, हनूमन्त आये वसंतै मनो लै॥
ठाढ़े भये लक्ष्मण मूरि छिए, दूनी सुभ सोभ शरीर लिए।
कोदंड लिए यह बात ररै, लंकेश न जीवित जाइ घरै॥



भूषण

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६७० तिकवांपुर में। मृत्यु सं० १७७२

वीर-रस के प्रसिद्ध महाकवि भूषण प्रसिद्ध कवि मतिराम व चिन्तामणि त्रिपाठी के भाई थे। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कविभूषण' की उपाधि दी थी। तभी से यह भूषण के नाम ही से प्रसिद्ध हो गए। इनका वास्तविक नाम अब किसी को ज्ञात नहीं। पहले ये अनेक राजाओं के यहाँ रहे, पर अन्त में अपनी विचार-धारा के अनुकूल छत्रपति महाराजा शिवाजी के यहाँ जा पहुँचे। पन्ना के महाराज छत्रसाल भी इनका बहुत सम्मान करते थे। यहाँ तक कि एक बार उन्होंने इनकी पालकी में अपना कन्धा लगाया था। इन्हें एक-एक कविता पर महाराज शिवाजी से लाखों रुपये, कई गाँव तथा हाथी प्राप्त हुए थे।

अन्यान्य रीतिकालीन कवियों ने या तो शृङ्गारिक वर्णन किये हैं अथवा अपने आश्रय-दाताओं की झूठी प्रशंसा में पृष्ठों-के-पृष्ठ रँग डाले हैं। किन्तु भूषण ने न तो जनता की कुत्सित वृत्तियों को जागृत करने वाली शृङ्गारिक रचना ही लिखी और न किसी राजा की चाटु-कारितापूर्ण झूठी प्रशंसा ही की। इन्होंने अत्याचार का दमन करने वाले, देश की स्वतन्त्रता के सच्चे पुजारी महापराक्रमी महापुरुषों की सच्ची वीरता का बखान कर, कवि-कर्तव्य का पूर्णरूपेण पालन किया है। यही कारण है कि अन्यान्य कवियों द्वारा अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में लिखी हुई किसी रचना या कविता का आज कोई नाम भी नहीं लेता। किन्तु भूषण के कवित्तों को जनता बड़े उत्साह से पढ़ती है। इनके 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दशक' ये तीन ग्रन्थ हैं

शिवा-प्रताप

देखत ऊँचाई उघरत पाग, सूधी राह,
धौसहू मैं चढ़ै ते जो साहस निकेत हैं।
सिवाजी हुकुम तेरो पाय पैदलन सल-
हेरी, परनालो ते वै जीते जनु खेत हैं॥
सावन भादौं की भारी कुहू की अँध्यारी चढ़ि,
दुग्ग पर जात मावलीदल सचेत हैं।
'भूषन' भनत ताकी बात मैं विचारी तेरे,
परताप-रवि की उज्यारी गढ़ लेत हैं॥

कामिनी कन्त सों जामिनि च , दामिनी पावस-मेघ-घटा सों।
कीरति दान सों, सूरति ज्ञान सों, प्रीति बड़ी सनमान महा सों॥
'भूषन' भूषन सों तरुनी, नलिनी नव पूषण देव-प्रभा सों।
जाहिर चारिहु ओर जहान लसै हिंदुवान खुमान सिवा सों॥

दारुन दुगुन दुरजोधन ते अवरंग,
'भूषन' भनत जग राख्यो छल मढ़ि कै।
धरम धरम, वल भीम, पैज अरजुन,
नकुल अकिल, सहदेव पेज चढ़ि कै॥
साहि के सिवाजी गाजी कर्यो दिली माहि चण्ड
पाण्डवन हू ते पुरुषारथ सुवढ़ि कै।

सूने लाख-भौन ते कढ़े वै पाँच राति मैं जु,
धौस लाख चौकी ते अकेले आयो कढ़ि कै॥
पूरब के उत्तर के, प्रबल पछाँह हू के,
सब पातसाहन के गढ़ कोट हरते।
'भूषन' कहैं यों अवरंग सों वजीर जीति-
लीवे को पुरतगाल सागर उतरते॥
सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज,
हजरत हम मरिवे को नहिं डरते।
चाकर हैं उजर कियो न जाय नेक पै,
कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥
कसत मैं वार वार वैसोई वलन्द होत,
वैसोई सरस रूप समर भरत है।
'भूषन' भनत महाराज सिवराजमनि,
सघन सदाई जस फूलनि धरत है॥
बरछी कृपान गोली तीर केते मान जोरा—
वर गोला वान तिनहू को निदरत है।
तेरो करवाल भयो जगत को ढाल अव,
सोई हाल म्लेच्छन के काल को करत है॥
झंझा सी दिन को भई संझा सी सकल दिसि,
गगन लगन रही गरद छवाय है।
चील्ह, गीध, वायस समूह घोर रोर करैं,
ठौर ठौर चारों ओर तम मँडराय है॥

'भूषन' अंदेस देस-देस के नरेसगन,
आपुस मैं कहत यों गरब गँवाय है।
बड़ो बड़वा को, जितवार चहुँधा को दल,
सरजा सिवा को, जानियत इत आय है॥
साजि चतुरंग वीर रंग मे तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी-नद मद गैवरन के रलत है॥
ऐल फैल खैल भैल खलक मे गैल-गैल,
गजन की ठेलपेल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरीधारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है॥
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं।
कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करैं,
वीन वेर खातीं ते वै वीन वेर खाती हैं॥
भूषन सिथिल अंग, भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥
उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेऊ निस-दिन मगमग चली जाती हैं

अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहाती-बोले अति अनखाती हैं ॥
'भूषन' भनत वली साहि के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुने अरिनारी विललाती हैं।
कोन्ह मे जातीं वे घूपे चली जाती पुनि,
कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती हैं ॥
सबन के ऊपर ही -ठाढो रहिबे -के जोग,
ताहि खरो कियो पञ्ज-जारिन के नियरे।
जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम, न वचन बोले सियरे ॥
'भूषन' भनत महावीर बलकन लागो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तनक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये,
स्याह मुख नौरङ्ग, सिपाह-मुख पियरे ॥
केतकी भो राना और बेला -सब राजा भये,
ठौर ठौर लेत रस नित्य यह काज है।
सिगरे अमीर भये कुन्द मरकन्द भरे,
भृंग सो भ्रमत लखि फूल के समाज है ॥
'भूषन' भनत शिवराज देश देशन की,
राखि है बटोरि एक दच्छिन मे लाज है।
तजत मिलिन्द जैसे तैसे तजि दूर भाज्यो,
अलि अवरङ्गजेब, चंपा सिवराज है ॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन वारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्र बाहु पर राम द्विजराज है॥
दावा द्रुम-दुण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
'भूषन' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
यों मलेच्छ-वंस पर सेर सिवराज है॥

कलिजुग जलधि अपार, उद्ध अधरम्म उम्मिमय।
लच्छनिलच्छ मलिच्छ कच्छ अरु मच्छ मगरचय॥
नृपति नदी नद-वृन्द होत जाको मिलि नीरस।
भनि भूषन सब भुम्मि घेरि किन्निय सुअप्प बस॥
हिन्दुवान पुन्य गाहक-वनिक, तासु निवाहक साहिसुव।
वर बादवान किरवान धरि, जस जहाज सिवराज तुव॥

सिंह थरि जाने विन जावली जंगल भठी,
हठी-गज एदिल पठाय करि भटक्यौ।
'भूपन' भनत देखि भभरि भगाने सब,
हिम्मति हिए में धरि काहुवै न हटक्यौ॥
साहि के सिवाजी गाजी सरजा समत्थ महा,
मद्गल अफजलै पंजाबल पटक्यौ।
ता विगिर ह्वै करि निकाम निज धाम कहँ,
आकुत महाउत सुआँकुस लै सटक्यौ॥

कवि कहैं करन, करन-जीत कमनैत,
अरनि के उर माँहि कीन्ह्यो इमि छेव है।
कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसो,
और धराधरन को मेटो अहमेव है॥
'भूषन' भनत महाराज सिवराज तेरो,
राज-काज देखि कोऊ पावत न भेव है।
कहरि यदिल, मौज-लहरी कुतुब कहै,
बहरी निजाम जितैया कहैं देव है॥
छूटत कमान और गोली तीर बानन के,
होत कठिनाई मुरचानहू की ओट में।
ताहि समै सिवराज हाँक मारि हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला वीरवर जोट में॥
'भूषन' भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में॥
कोप करि चढ्यो महाराज सिवराज वीर,
धौंसा की धुकार ते पहार दरकत हैं।
गिरे कुंभि मतवारे श्रोनित फुहारे छूटे,
कडाकड छिति नाल लाखों करकत हैं॥
मारे रन जोम के जवान खुरासान केते,
काटि काटि डाटि दाबे छाती दरकत हैं।

रन-भूमि लेटे वे चपेटे पठनेटे परे,
रुधिर लपेटे मुगलेटे फरकत है ॥
दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी,
उग्ग पर उग्ग नाचे रुंड मुंड फरके।
'भूषन' भनत बाजे जीत के नगारे भारे,
सारे करनाटी भूप सिंहल लौं सरके ॥
मारे सुनि सुभट पनारेवारे उद्भट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धर के।
बीजापुर बीरन के, गोलकुण्डा धीरन के,
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके ॥
जिन फन फुलकार उड़त पहार भार,
कूरम कठिन जनु कमल विदलि गो।
विष ज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन,
जिनते चिकारी मद दिग्गज उगलि गो ॥
कीन्हों जिन पान पूलपान सो लहान सब,
· भूषन भनत सिंधुजल थल हलि गो।
खग्ग-खगराज महाराज सिवराज तेरो,
अखिल मुगल-दल-नाग को निगलि गो ॥
गरुड़ को दावा सदा नाग के समूह पर,
दावा नाग-जूह पर सिंह सिरताल को।
दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,
पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥

'भूषन' अखंड नव खंड महि-मंडल में,
तम पर दावा रवि-किरन-समाज को।
पूरब पछाँह देश दच्छिन ते उत्तर लौं;
जहाँ पातसाही तहाँ दावा सिवराज को॥

वेद राखे विदित, पुरान राखे सार युत,
राम नाम राख्यो आनि रसना सुघर में।
हिंदुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहन की,
काँधे में जनेऊ राख्यो माल राखी गर में॥
मीड़ि राखे मुगल, मरोरि राखे पातसाह,
बैरी पीस राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥

गढ़न गँजाय गढ़ धरन सजाय करि,
छाँड़े केते धरम दुआर दै भिखारों से।
साहि के सपूत पूत बीर सिवराज सिंह,
केते गढ़धारी किये बन बनचारी से॥
'भूषन' बखानैं केते दीन्हे बन्दीखाने सेख,
सैयद हजारी गहे रैयत बजारी से।
महतो से मुगल, महाजन से महाराज,
डांडि लीन्हें पकरि पठान पटवारी से॥

आपस की फूट ही ते सारे हिन्दुवान टूटे,
टूट्यो कुल रावन अनीति अति करते।

पैठिगो पताल वली वज्रधर डरपालें,
टूट्यो हिरनाच्छ अभिमान चित धरते ॥
टूट्यो सिसुपाल वासुदेव जू सों वैर करि,
टूट्यो है महिप दैत्य अधम विचरते।
राम कर छुवन ते टूट्यो ज्यों महेसचाप,
टूटी पातसाही सिवराज संग लरते ॥

❀ ❀ ❀

छत्रसाल का शौर्य

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खोदि खोदि खाती दीह दारुए दलन के।
वखतर पाखरनि वीच धँसि जाती मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥
रैया राय चम्पति को छत्रसाल महाराज,
भूषन सकत को वखान यों वलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने वीर,
तेरी वरछी ने वर छीने हैं खलन के ॥
हैवर हरट्ट साजि गैवर गरट्ट सम,
पैदर के ठट्ट फौज जुरी तुरकाने की।
'भूषन' भनत राय चम्पति के छत्रसाल,
रोप्यो रन ख्याल ह्वै के ढाल हिन्दुवाने की ॥
कैयक हजार एक वार वैरि मारि डारे,
रंजक दगनि मानौं अगिनि रिसाने की।
सैद अफगान सेन सगर सतन लागी,
कपिल सराप लौं तराप तोपखाने की ॥

चाक चक चमू के अचाकचक चहुँ ओर,
चाक सी फिरती धाक चम्पति के लाल की।
भूषन भनत पातसाही मारि जेर कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की॥
सुनि सुनि रीति बिरदैत के बड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की बानि छत्रसाल की।
जंग जीति लेवा ते वै ह्वै कै दाम देवा भूप,
सेवा लागे करन महेवा महिपाल की॥

देस दहवट्टि आयो आगरे दिली के मेंड़े,
बरगी बहरि मानौ दल जिमि देवा को।
'भूषन' भनत छत्रसाल छितिपाल मन तांके,
ते कियो विहाल जंग जीति लेवा को॥
खंड खंड सोर यों अखंड महि मंडल में,
मंडो, ते बुंदेलखंड मंडल महेवा को।
दच्छिन के नाह को कटक रोक्यो महाबाहु,
ज्यों सहस्रबाहु ने प्रवाह रोक्यो रेवा को॥

राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो,
गाजत गयन्द दिग्गजन हिय साल को।
जाहि के प्रताप सों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुज्जन करत बहु ख्याल को॥
साज सजि गज तुरी, पैदर कतार दीन्हें,
'भूषन' भनत ऐसे दीन प्रतिपाल को।
और राजा राव एक मन मैं न ल्याऊँ अब,
साहू को सराहौं कै सराहौं छत्रसाल को॥

बिहारी

जीवन-परिचय

जन्म सं० १६६० बसुआ गोविन्दपुर में, मृत्यु सं० १७२० मथुरा में।

सर्वोत्कृष्ट शृंगारी कवि बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बीती। युवावस्था में कुछ वर्षों तक ये जयपुर के राजा मिर्ज़ा जयशाह के आश्रय में रहते रहे। तदनन्तर अपनी ससुराल मथुरा में जा बसे। आचार्य केशव इनके कविता-गुरु थे। इनकी रचना परिमाण में अत्यन्त ही स्वल्प—सात सौ दोहे-मात्र हैं। फिर भी जितनी अधिक ख्याति इनकी हुई है उतनी अन्य किसी शृंगारी कवि की नहीं। इनकी रचना की महत्ता इसी से स्पष्ट है कि बिहारी सतसई की अब तक बीसियों टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ आदि हो चुकी हैं, तुलसी को छोड़कर अन्य किसी भी कवि पर इतना अधिक साहित्य निर्मित नहीं हुआ। एक दृष्टि से यह तुलसी से भी बढ़ जाते हैं। तुलसी के किसी भी ग्रन्थ का अभी तक संस्कृत और उर्दू में पद्यानुवाद नहीं हुआ किन्तु बिहारी-सतसई का संस्कृत में 'शृंगारसप्तशती' के नाम से अनुवाद हो चुका है। अतः यह मानना ही होगा कि इन्होंने जो कुछ लिखा है वह अत्यन्त चमत्कारपूर्ण, सरस और मार्मिक है।

शृंगार के अतिरिक्त नीति, भक्ति आदि अन्यान्य विषयों पर भी इन्होंने बहुत सुन्दर लिखा है। वाग्वैदग्ध्य तो इनका अपना

विशेष गुण है। मुक्तक रचना प्रबन्ध-काव्य की अपेक्षा क्लिष्ट मानी गई है। मुक्तक काव्य के लिए आवश्यक सभी गुण बिहारी की रचना में चरमोत्कर्ष पर पहुँचे हैं। संक्षेप में कह सकते हैं कि 'किसी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण से नहीं प्रत्युत गुणों के हिसाब से होता है'। बिहारी की रचना इस तथ्य का ज्वलन्त और सजीव प्रमाण है।

विहारी-विहार

मेरी भव-बाधा हरो, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै, स्यामु हरित-दुति होइ॥ १॥

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारी।
तज्यौ मनौ तारन-विरदु, वारक वारनु तारि॥ २॥

जम-करि-मुँह-तरहरि परयो, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउ॥ ३॥

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं॥ ४॥

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि॥ ५॥

बंधु भए का दीन के, को तारयौ, रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ॥ ६॥

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाइ॥ ७॥

दियौ, सु सीस चढ़ाइ लै, आछी भाँति अएरि।
जापै सुखु चाहतु लियौ, ताके दुखहि न फेरि॥ ८॥

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, बिपति-बिदारनहार॥ ९॥

मकराकृति गोपाल कैं, सोहत कुंडल कान।
धरयौ मनौ हिय-गढ़ समरु, ड्यौढ़ी लसत निसान॥ १०॥

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं त्यौ उज्जलु होय॥ ११ ॥

जपमाला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम।
मन-कांच नाचै वृथा, साचै राचै रामु॥ १२ ॥

घर घर डोलत दीन ह्वै, जनु जनु जाचत जाइ।
दियै लोभ चसमा चखन, लघु पुनि बड़ौ लखाइ॥ १३ ॥

मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सु चित-अंतर तऊ, प्रतिबिंबितु जग होइ॥ १४ ॥

बड़े न हूजै गुनतु बिनु, बिरद-बडाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्यौ न जाइ॥ १५ ॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होत प्रयागु॥ १६ ॥

कीजै चित सोई, तरे जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु, गनौ न गोपीनाथ॥ १७ ॥

हरि, कीजति बिनती यहै, तुमसौं बार हजार।
जिहिं-तिहिं भांति डर्‌यौ रह्यौ, पर्‌यौ रहौं दरबार॥ १८ ॥

गिर तैं ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहां हजारु।
वहै सदा पसु, नरनु कौं, प्रेम-पयोधि पगारु॥ १९ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि रही गुलाब मैं, अपत कँटीली डार॥ २० ॥

मैं तपाइ त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आऐं यहां, पुलकि पसीजै स्यामु॥ २१ ॥

स्वारथु, सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि परि, तूँ पच्छीनु न मारि॥ २२॥
सीस-मुकट, कटि-काछनी, कर-मुरली उर माल।
इहिं बानक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल॥ २३॥
न ए बिससियहि लखि नए, दुर्जन दुसह-सुभाइ।
आटैं परि प्रानन हरत, काटैं लौं लगि पाइ॥ २४॥
नर की अरु नल-नीर की, गति एकै कर जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ॥ २५॥
बढ़त-बढ़त संपति-सलिलु, मन-सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत-घटत सुन फिरि घटै, वरु समूल कुम्हिलाइ॥ २६॥
कोटि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल बल जलु ऊँचैं चढ़ैं अन्त नीच कौ नीचु॥ २७॥
गुनी गुनी सबकैं कहैं, निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं, अरक समान उदोतु॥ २८॥
दुसह दुराज प्रजानु कौं, क्यौं न बढ़ै दुख दंदु।
अधिक अंधेरौ जग करत, मिलि मावस रवि चंदु॥ २९॥
भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार॥ ३०॥
बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु, दानु॥ ३१॥
यह बिरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं, कीने पार पयोधि॥ ३२॥

अति अगाधु, अति औथरो, नदी, कूप, सरु बाइ।
सौ ताकौ सागरु जहाँ, जाकी प्यास बुझाइ ॥३३॥
मोर-मुकुट की चन्द्रिकनु, यौं राजत नँद नन्द।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चन्द ॥३४॥
अधर धरत हरि कैं परत, ओठ-डीठि-पट-जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र-धनुष रँग होति ॥३५॥
कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं, पातक, राजा, रोग ॥३६॥
जो सिर धरि महिमा मही, लहियति राजा राइ।
प्रगटत जड़ता अपनि पै, सु मुकटु पहिरत पाइ ॥३७॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं, लखैं बड़ी यौ भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल ॥३८॥
समै समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होइ ॥३९॥
या भव-पारावार कौं, उलँघि पार को जाइ।
तिय-छवि-छाया ग्राहिनी, ग्रहै वीचहीं आइ ॥४०॥
दिन दस आदरु पाइकै, करि लै आपु बखानु।
जौ लगि काग ! सराध पखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥४१॥
मरतु प्यास पिंजरा पर्‌यो, सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियत, बाइसु बलि की बेर ॥४२॥
इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब कै मूल।
ह्वै हैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥४३॥

वे न इहाँ नागर बढ़ी, जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ, गँवई गाँव गुलाब ॥४४॥
चल्यो जाइ, ह्याँ को करै, हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़, कुम्भार ॥४५॥
मूड़ चढ़ाए ऊ रहै, परचौ पीठि कच-भारु।
रहै गरैं परि राखबौ, तउ हियै पर हारु ॥४६॥
इक भीजैं, चहलैं परैं, बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै, वै-नै चढ़ती बार ॥४७॥
जाकैं एकाएक हूँ, जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै, आकु डहडहौ होइ ॥४८॥
मीत न नीत गलीतु ह्वै, जौ धरियै धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जौ जुरै, तौ जोरियै करोरि ॥४९॥
कहलाने एकत बसत, अहि मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोबन सौ कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥५०॥
छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधुरी-गन्ध।
ठौर ठौर झौंरत झपत, भौंर भौंर मधु-अंध ॥५१॥
लटुवा लौं प्रभु-कर गहैं, निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी-कर तैं छुटैं, निगुनियै ह्वै जाइ ॥५२॥
लोपे कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥५३॥
चितु दै देखि चकोर त्यौं, तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुगै अंगार की, चुगै कि चन्द-मयूख ॥५४॥

अपनैं अपनैं मत लगे, बादि मचावत सोरु।
ज्यों त्यों सबकौ सेइबो, एकै नन्दकिसोरु ॥५५॥
बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चित खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि, गनै लोग उतपातु ॥५६॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैक हूँ, फारि निहारै नैन ॥५७॥
तौ, बलियै भलियै बनी, नागर नन्दकिसोर।
जौ तुम नीकै कै लख्यौ, मो करनी की ओर ॥५८॥
मन मोहन सौं मोहु करि, तूँ घनस्यामु निहारि।
कुंज बिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥५९॥
किती न गोकुल कुलबधू, किहिं न काहि सिख दीन।
कौनै तजी न कुल गली, ह्वै मुरली-सुर-लीन ॥६०॥
इन दुखिया अँखियान कौं, सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनैं न देखतै, अनदेखै अकुलाहिं ॥६१॥
को छूट्यौ इहि जाल परि, कत, कुरंग, अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥६२॥
चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यौं न सनेह गम्भीर।
को घटि, ए वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥६३॥
ज्यों ह्वै हौ, त्यौं होऊँगो, हौ हरि, अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिनु है, मो तारिबौ गोपाल ॥६४॥

—:※:—

नरोत्तम

जीवन-परिचय

रचना-काल सं० १६०२ के लगभग

नरोत्तमदास सीतापुर जिले के बाड़ी नामक कसबे के निवासी थे। इनकी जाति तथा जन्म और मृत्यु-तिथि का उल्लेख कहीं नहीं मिला। शिवसिंह-सरोज में इनका सं० १६०२ में वर्तमान रहना लिखा है, अत इतने ही से सन्तुष्ट रहना चाहिए कि इनका रचना-काल सं० १६०२ के लगभग है।

इनकी केवल एक छोटी-सी रचना 'सुदामा-चरित' उपलब्ध है। पर ये इस एक रचना ही से अमर और हिन्दी के बड़े-बड़े कवियों की कोटि में विराजमान हो गए हैं। यद्यपि सुदामा-चरित छोटा-सा काव्य है किन्तु इनकी रचना बहुत ही सरस, प्रौढ़ तथा हृदयग्राहिणी है और कवि की भावुकता का परिचय देती है। दरिद्रता—गरीबी का जैसा सुन्दर सजीव चित्र नरोत्तमदास ने इस काव्य में अंकित किया है वैसा अन्य कोई भी कवि नहीं कर पाया। वर्णन की विशदता और भावों की उत्कृष्टता के साथ-ही-साथ भाषा भी अत्यन्त परिमार्जित प्राञ्जल एवं सुव्यवस्थित है। इस प्रकार भव्य भावों के साथ-साथ कोमलकान्त पदावली सोने में सुगन्धि का काम कर रही है। इनकी कविताओं में शब्दाडम्बर या अनावश्यक और भरती का एक भी शब्द नहीं है। भाषा और भावों की ऐसी उत्कृष्टता रीतिकालीन अन्य कवियों में बहुत ही कम देखने में आती है। इन्हीं गुणों के कारण पाठक सुदामा-चरित पढ़ते-पढ़ते आत्मविभोर-सा हो जाता है। 'ध्रुव-चरित' भी इनकी प्राप्य रचना कही जाती है।

सुदामा-चरित्र

स्त्री—

लोचन कमल दुख मोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत वसन गरे में बैजयन्ति माल,
संख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ है॥
कहत नरोत्तम संदीपनि गुरू के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ है।
द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे नाथ,
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ है॥

सुदामा—

सिच्छक हौ सिगरे जगको तिय! ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तपकै परलोक सुधारति संपति की तिनके नहिं इच्छा॥
मेरे हिय हरि के पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरि ब्राह्मन को धन केवल भिच्छा॥

स्त्री—

कोदों सवां जुरतो भरि पेट, न चाहती हौं दधि दूध मठौती।
सीत व्यतीत भयो सिसियातहि, हौं हठती पै तुम्हे न हठौती॥
जौ जानती न हितू हरि सो तुम्हे काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर ते कबहूँ न गयो पिय! टूटो तवो अरु फूटी कठौती॥

सुदामा—

छाँड़ि सबै तक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै जक ठानी।
जातहि दैहैं लदाय लढा भरि लैहो लदाय यही, जिय जानी॥
पावै कहा ते अटारी-अटा जिनके विधि दीन्हीं है टूटी-सी छानी।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तौ काहू पै मेटि न जात अजानी॥

स्त्री—

फाटे पट टूटी छानि खायौ भीख माँग आनि
बिना जग्य विमुख रहत देव पित्रई।
वे हैं दीनबन्धु दुखी देखिकै दयालु ह्वै हैं,
दैहै कुछ भलो सो हौं जानत अगत्रई॥
द्वारिका लौं जात पिय! के तौ अलसात तुम,
काहे को लजात भई कौन सी विचित्रई।
जौ पै सब जनम दरिद्र ही सतायौ तौ पै,
कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई॥

सुदामा—

तैं तौ कही नीकी सुनि बात हित ही की यही,
रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइए।
मित्र के मिले तें चित्त चाहिए परस्पर,
मित्र के जो जेइए तो आपहू जेंवाइए॥
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यहि रूप जाय कहा सकुचाइए।
सुख-दुख करि दिन काटे ही बनैगे भूलि—
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए॥

स्त्री—

हूजै कनावड़ो बार हजार लौं जौ हितु दीनदयाल सो पाइए।
तीनहुँ लोक के ठाकुर हैं तिनके दरबार मे जात न लजाइए॥
मेरी कही जिय मे धरिकै पिय! भूलि न और प्रसंग चलाइए।
और के द्वार सों काज कहा पिय! द्वारिका नाथ के द्वार सिधाइए॥

सुदामा—

द्वारिका जाहू जू द्वारिका जाहू जू आठहु जाम यहै जक तेरे।
जौ न कह्यौ करिए तौ बड़ौ दुख लैए कहां अपनी गति हेरे॥
द्वार खरे प्रभु के छरिया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पान सुपारी तैं देखु विचारकै भेट कौं चारि न चाउर मेरे॥

यह सुनिके तब ब्राह्मनी, गई परोसन पास।
पाव सेर चाउर लिए, आई सहित हुलास॥

सिद्धि करो गनपति सुमरि, बाधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग वाली बूँट॥

दीठि चकाचौंध गई देखत सुवर्नमई,
एक ते सरस एक द्वारिका के भौन है॥

देखत सुदामै धाय पुरजन गहे पाँय,
"कृपा करि कहौ विप्र कहाँ कीन्हौं गौन हैं?"

"धीरज अधीर के, हरन पर पीर के,
बताओ बलबीर के भवन यहाँ कौन हैं?"

द्वारपाल—

सीस पगा न झगा तन मे प्रभु ! जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
पूछत दीनदयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥
लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेट्यौ।
सोच भयो सुरनायक के कलपद्रुम के हिय माझ खखेट्यौ॥
कंप कुबेर हिये सरसों, परसे पग जात सुमेरु समेट्यौ।
रंक ते राव भयो तबहीं जबहीं भरि अंक रमापति भैंट्यौ॥
ऐसे बेहाल बिवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोए।
हाय महादुख पायौ सखा ! तुम आए इतै ना कितै दिन खोए॥
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोए।
पानी परात के हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सों पग धोए॥

तन्दुल तिय दीन्हें हुते, आगे धरियो जाय।
देखि राज संपति विभव, दै नहिं सकत लजाय॥
अन्तरजामी आपु हरि, जानि भगत की रीति।
सुहृद सुदामा विप्र सों प्रगट जनाई प्रीति॥

श्रीकृष्ण—

कछु भाभी हम कौं दियौ, सो तुम काहे न देत।
चाँपि पोटरी काँख मैं, रहे कहौ केहि हेत॥

आगे चना गुरु मात दए ते लए तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कह्यौ मुसकाय सुदामा सों, चोरी की बानि में हौ जू प्रवीने॥

पोटरी काँख में चाँप रहे तुम खोलत नाहिं सुधा-रस-भीने !
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने ॥

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखरि गए तेहि ठौर ॥
एक मुठी हरि भरि लई, लीन्ही मुख में डारि।
चबत चबाउ करन लगे चतुरानन त्रिपुरारि ॥

काँप उठी कमला मन सोचत 'मो सों कहा हरि कौ मन औंको ?"
रिद्धि कँपी सब सिद्धि कँपी नव निद्धि कँपी बम्हना यह धौं को ?'
सोच भयो सुरनायक कों जब दूसरि बार लियौ भरि भौंको ॥
मेरु डर्‌यो बकसै जनि मोहिं कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥

हूल हियरा मैं, सब कानन परि है टेर,
'भेंटत सुदामै स्याम बाबि न अघात ही।'
कहै नरोत्तम रिद्धि-सिद्धिन मैं सोर भयौ,
ठाढ़ी थरहरैं और सोचैं कमला तहीं ॥
नाकलोक, नागलोक, ओक-ओक थोक-थोक,
ठाढ़े थरहरैं मुख सूखे सब गातहीं।
हालो परो थोकन मैं, लालो परो लोकन मैं,
चालो परो चक्रन मैं चाउर चबातही ॥

भौन भरे पकवान मिठाइन लोग कहैं निधि हैं सुषमा के।
साँझ सवेरे पिता अभिलाषत दाख न चाखत सिंधु छमा के ॥
बाम्हन एक कोउ दुखिया सेर-पावक चाउर लायौ समा के।
प्रीति की रीति कहा-कहिये तेहि बैठि चबावत कंत रमा के ॥

मुठी तीसरी भरत ही, रुकुमिनि पकरी बाँह।
'ऐसी तुम्हे कहा भई. संपति की अनचाह' ॥
कही रुकमिनि कान मैं, यह धौ कौन मिलाप।
करत सुदामहि आप सो, होत सुदामा आप ॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता,
जीती जिन सोभा है सरद हू के चन्द की।
दूसरे पहीति-भात सोधो सुरभी कौ घृत,
फूले-फूले फुलका प्रफुल्ल द्युति मन्द की ॥
पापर मुँगरी बरा व्यजन अनेक, प्रीति,
देवता त्रिलोकि रहे देवकी के नन्द की।
या विधि सुदामाजू कौं आछे कै जंवाय प्रभु,
पाछे ते पछ्यावरि परोसी आनि कन्द की ॥

सात दिवस यही विधि रहे, दिन दिन आदर भाव।
चित्त चल्यो घर चलन कौं, ताकर सुनौ बनाव ॥
देनो हुतौ सो दे चुके, विप्र न जानी गाथ।
चलती वेर गुपालजू, कछू न दीन्हो हाथ ॥

सुदामा—

वह पुलकनि वह उठि मिलनि, वह आदर की भाँति।
यह पठवनि गोपाल की, कछू न जानी जाति ॥
घर घर कर ओड़त फिरे, तनक दही के काज।
कहा भयो जो अब भयौ, हरि को राज समाज ॥

हौं इत कब आवत हुतौ, वाही पठ्यौ ठेलि।
कहिहौं धनसौं जाइकै, अब धन धरौ सकेलि॥
बालापन के मित्र हैं, कहा देउँ मैं साप।
जैसों हरि हम कों दियो, तैसो पइहै आप॥
प्रीति आरसी विमल है, सब कोउ सेवै जानि।
कपट मोरचा लगत ही, होत दरस की हानि॥
'इतनो मम आदर कियो, दियो न कछु मोहि स्याम।
या प्रकार सोचत चल्यो, विप्र आपने धाम॥

नौ गुनधारी छगुन सों, तिगुना मध्ये जाय।
लायौ चापल चौगुनी, आठौ गुननि गँवाय॥

और कहा कहिए जहाँ, कञ्चन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो, मोकों दियो न दाम॥

—:※:—

मीराबाई

जीवन-परिचय

जन्म—सं० १५७३ मेड़ता। मृत्यु—लगभग सं० १६२० द्वारिका।

सर्वश्रेष्ठ कृष्ण-भक्त स्त्री कवयित्री मीराबाई मेड़ता के राव रत्नसिंह की पुत्री व महाराणा सांगा के सुपुत्र भोजराज की पत्नी थीं। विवाह के सात वर्ष के पश्चात् ही वे विधवा हो गईं। आरम्भ ही से वे भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्त थीं। विधवा होने पर उनकी यह भक्ति पराकाष्ठा पर पहुँच गई। अब वे श्रीकृष्ण की पति-रूप में उपासना करने लगीं। साधु-संगति, श्रीकृष्णलीला-चर्चा, पूजा-अर्चा को छोड़ अब उन्हें कोई दूसरा काम नहीं रह गया। इस पर इनका देवर विक्रमादित्य बहुत रुष्ट रहने लगा और विरोध करने लगा। यहाँ तक कि एक बार तो उसने विष-मिश्रित दूध भी पीने के लिए भेजा, जिसे सहर्ष वे पी गईं। किन्तु उस हलाहल विष का कुछ भी प्रभाव न हुआ। अन्त में रात-दिन के विरोध को न सहकर वे वृन्दावन की यात्रा को चली गईं। इससे पूर्व उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी से निम्नलिखित पत्र लिख-कर पूछा था कि ऐसी परिस्थिति में मेरा क्या कर्तव्य है—

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषन दूषण हरन गोसाईं।
बारहिं बार प्रनाम करहुँ, अब हरहु सोक समुदाई॥

घर के स्वजन हमारे जेते, सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु संत अरु भजन करतु मोहि देत कलेप महाई॥
मेरे मात पिता के सम हौं हरि भक्तन्ह सुखदाई।
हम को कहा उचित करबो है, सो लिखिए समुझाई॥

इस पर गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका का यह पद लिख कर भेजाः—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो नर तजिए कोटि वैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
नाते सबे राम के मनियत सुखद सुहृद जहां लौं।
अंजन कहा आँखि जो फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥

वृन्दावन से वे द्वारिका चली गईं।

मीरा की भक्ति माधुर्यभाव से परिपूर्ण है। उनकी कविता की उत्कृष्टता को देखते हुए, समालोचक जगत ने उन्हें सूर और तुलसी के समान माना है। कृष्ण-भक्त स्त्री कवियों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि पहले कहा गया है, वे अपने इष्टदेव कृष्ण की उपासना प्रियतम या पति के रूप में करती थी। इस प्रकार की उपासना में रहस्य का समावेश अनिवार्य है। फलतः सूफ़ियों की 'हाल' की दशा का इन कृष्ण-भक्तों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इनकी रचनाएँ कुछ तो राजस्थानी-मिश्रित भाषा में है और कुछ शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में। इनके निम्नलिखित चार ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—

१—नरसीजी का मायरा। २—गीत-गोविन्द टीका। ३—राग गोविन्द। ४—राग सोरठ के पद।

पद

(१)

बसो मोरे नैनन में नंदलाल।

मोहनी मूरति, सॉवरी सूरति, नैना बने बिसाल॥
मोर-मुकुट, मकराकृति कुंडल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधर सुधा-रस मुरली राजति, उर वैजंती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर-सबद रसाल।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल॥

(२)

मन रे परसि हरि के चरण।

सुभग सीतल कॅवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला-हरण॥
जिण चरण प्रहलाद परसे, इन्द्र-पदवी धरण॥
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरण॥
जिण चरण ब्रह्मांड भेट्यो, नख सिख सिरी धरण॥
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम-घरण॥
जिण चरण गोवरधन धर्‌यो, इन्द्र को ग्रब हरण॥
दासी 'मीरा' लाल गिरधर, अगम तारण-तरण॥

(३)

भज मन चरण-कॅवल अविनासी।

जेताइ दीसै धरण-गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी॥
इम देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी॥

यो संसार चहर की बाजी, सांझ पड़्यां उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीने, कहा लिये करवत कासी ?
कहा भयो है भगवा पहर्‌यां, घर तज भये संन्यासी ?
जोगी होइ जुगत नहिं जाणी, उलट जनम फिर आसी ॥
अरज करौं अवला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ॥

(४)

या मोहन के रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल-दल लोचन, बांकी चितवन मंद मुसकानी ॥
जमना के नीरे तीरे धेन चरावै, बंसी में गावै मीठी वानी ॥
तन मन धन गिरधर पर वारूं, चरण-कँवल 'मीरा' लपटानी ॥

(५)

माई री मैं तो लियो गोविंदो मोल।
कोई कहै छानै कोई कहै चौडे, लियो री बजंता ढोल ॥
कोई कहै मुंहघो कोई सुंहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल ॥
या ही कूं सब लोग जाणत है, लियो री आंखी खोल।
'मीरा' कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, पूरब जनम कौ कोल ॥

(६)

देखत राम हँसे सुदामा कूँ, देखत राम हँसे।
फाटी तो फूलड़िया पाव उभाणो, चलतै चरण घसे।
बालपणे का मिंत सुदामां, अब क्यूं दूर बसे।

कहा भावज ने भेट पठाई, तांदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे॥
कित गई प्रभु मोरी गउअन वछिया, द्वारा बिच हॅसती फसे।
'मीरा' के प्रभु हरि अविनासी, सरणे तोरे वसे॥

(७)

नहीं ऐसो जनम वारंवार।
का जाणूं कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार॥
बढ़त छिन-छिन घटत पल-पल, जात न लागै वार।
विरछ के ज्यों पात टूटे, वहुरि न लागै डार॥
भौ-सागर अति जोर कहिये, अनंत ऊँडी धार।
राम-नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार॥

(८)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट, मेरो पति सोई॥
छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठि बैठि, लोक लाज खोई॥
अँसुअन जल सींच-सींच, प्रेम-बलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणंद-फल होई॥
भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर, तारो अब मोई॥

(६)

करम-गत टारे नाहिं टरे।

सदवादी हरिचंद्र-रो राजा, सो तो नीच घर नीर भरे।
पाँच पाडु अरु कुंती द्रोपदी, हाड हिमालै गरे।
जग्ग कियो बलि लेण इन्द्रासण, सो पाताल धरे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, विख से अमृत करे।

(१०)

मैंने राम रतन धन पायौ।

वसत अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सबै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोर ना लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भव सागर तरि आयौ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायौ॥

(११)

फागुण के दिन चार रे, होरी खेल माना रे।

बिनि करताल पखावज वाजै, अणहद की झनकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूं गावै, रोम-रोम रंग सार रे।
सील संतोख की केसर घोली, प्रेम-प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक-लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये, सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कंवल बलिहार रे॥

मतिराम

जीवन-परिचय

जन्म—सं० १६७४ तिकवाँपुर में। मृत्यु—सं० १७७३।

मतिराम की गणना रीतिकाल के प्रमुख कवियों में है। ये चिन्तामणि और भूषण के भाई कहे जाते हैं। ये बूँदी के महाराज भावसिंह के आश्रय में रहते रहे। मतिराम की रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसकी सरसता अत्यन्त स्वाभाविक है, न तो उसमें भावों की और न भाषा ही की कृत्रिमता है। जितने शब्द और वाक्य हैं वे सब भावव्यंजना ही में प्रयुक्त हुए हैं। सारांश यह है कि मतिराम की सी रसस्निग्ध और प्रसादपूर्ण भाषा रीतिकालिक इने-गिने ही कवियों में मिलती है।

भाषा के समान ही इनके न तो भाव कृत्रिम हैं और न उनके व्यंजक व्यापार या चेष्टाएँ ही। भावों को आकाश पर चढ़ाने और दूर की कल्पना के फेर में ये नहीं पड़े। इनका सच्चा कवि-हृदय था। यदि ये रीतिकालीन परम्परा पर न चलकर अपनी स्वाभाविक प्रेरणा के अनुसार चल पाते तो और भी स्वाभाविक और सच्ची भाव-विभूति दिखाते, इसमें कुछ सन्देह नहीं। भारतीय जीवन से छाँटकर लिये गए इनके मर्मस्पर्शी चित्रों में जो भाव भरे हैं वे समान रूप से सबकी अनुभूति के अङ्ग हैं। इनका 'रसराज' परम मनोहर तथा अत्यन्त सरस ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनके ये ५ ग्रन्थ और हैं—ललित-ललाम, छन्दसार, साहित्यसार, लक्षणसार और मतिराम-सतसई।

दोहे

मो मन तमतो मर्हि हरौ राधा कौ मुख-चंद ।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नंद - नॅदन - आनंद ॥१॥

मंजु गुञ्ज के हार उर मुकुट मोरपरपुञ्ज ।
कुञ्ज बिहारी बिहरियै मेरेई मन - कुञ्ज ॥२॥

राधा मोहन - लाल कौ जाहि न भावत नेह ।
परियौ मुठी हजार दस ताकि आँखिनी खेह ॥३॥

तेरी मुख-समता करी साहस करि निरसंक ।
धूरि परी अरविंद-मुख चंदहि लग्यौ कलंक ॥४॥

गमृपति जित्यौ सुलंक सौं मृगलाञ्छन मृदु हास ।
मृग-चख जित्यौ सुनैन सौं मृग-मद जित्यौ सुवास ॥५॥

कहा भयौ मतिराम हिय जौं पहिरी नॅदलाल ।
लाल मोल पावै नहीं लाल गुञ्ज की माल ॥६॥

गुन औगुन कौ तनकऊ प्रभु नहिं करत विचार ।
केतकि कुसुम न आदरत हर सिर धरत कपार ॥७॥

निज बल कौ परिनाम तुम तारै पतित बिसाल ।
कहा भयौ जु न हौं तरउ तुम खिस्याहु गोपाल ॥८॥

निडर बटोही बाट मे ऊखनि लेत उखारि ।
अरे गरीब गॅवार तैं काहे करत उजार ॥९॥

बसिबे कौं निज सरवरनि सुर जाकौं ललचाहिं ।
सो मराल बकताल मैं पैठन पावत नाहिं ॥१०॥

अद्भुत या धन कौ तिमिर मो पै कह्यौ न जाइ।
ज्यौं-ज्यौं मनिगन जगमगत त्यौं-त्यौं अति अधिकाइ ॥११॥

कोटि कोटि मतिराम कहि जतन करौ सब कोइ।
फाटे मन अरु दूध मैं नेह न कबहूँ होइ ॥१२॥

सुवरन वरन सुवास जुत सरस दलनि सुकुमार।
ऐसे चंपक कौ तजै तैंहीं भौंर गँवार ॥१३॥
सुवरन वेलि तमाल सौं घन सौं दामिनि देह।
तूं राजति घनस्याम सौं राधे सरसि सनेह ॥१४॥
अब तेरौ बसिबो इहाँ नाहिंन उचित मराल।
सकल सूखि पानिप गयौ भयौ पङ्कमय ताल ॥१५॥
दुख दीनै हूँ सुजन जन छोड़त निज न सुदेस।
अगरु डारियत आगि मैं करत सुबासित देस ॥१६॥
सरद चाँदनी में प्रगट होत न तिय के अंग।
सुनत मंजु मंजीर अब सखी न छोड़ति संग ॥१७॥
सुजस ओज-सौं साह-सुत सिवा सूरसिरदार।
सरद चंद आतप कियो सुचि आतप इक वार ॥१८॥
पिसुन-बचन सज्जन चितै सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं तुपक तीर तरवारि ॥१९॥
अति सुढार अति ही बड़े पानिप भरे अनूप
नाकमुकत नैनानि सौं होड़ परी इहि रूप ॥२०॥
ललित मंद कल हंस गति मधुर मंद मुसिक्याति।
चली सारदा विमद-रुचि सरद - चाँदनी राति ॥२१॥

प्रीति द्वैज द्विजराज की कला कलप करि चित्र।
जगत लोक वंदित उदित बढ़त मित्र जो मित्र ॥२२॥
प्रतिबिंबित तो बिंब मैं भूतल भयौ कलंक।
निज निरमलता दोष यह मन मैं मानि मयंक ॥२३॥
तिहिं पुरान नव-द्वै पढ़ै जिहिं जानी यह बात।
जो पुरान सो नव सदा नव पुरान ह्वै जात ॥२४॥
सुखद साधुजन कौं सदा गजमुख दानि उदार।
सेवनीय सब जगत कौ जगमाया सुकुमार ॥२५॥
मदरसमत्त मिलिंद-गन गान मुदित गन-नाथ।
सुमिरत कवि मतिराम कैं सिद्धि रिद्धि निधि हाथ ॥२६॥
अङ्ग ललित सित-रंग पट अङ्ग राग अवतंस।
हंस - बाहिनी कीजियै बाहन मेरौ हंस ॥२७॥
जो निसि दिन सेवन करै अरु जो करै विरोध।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु कहौ कौन यह बोध ॥२८॥
पगीं प्रेम नंदलाल कै हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइकै भीख न माँगत लोग ॥२९॥
देखत दीपति दीप की देत प्रान अरु देह।
राजत एक पतंग मैं बिना कपट कौ नेह ॥३०॥
मो मन मेरी बुद्धि लै करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी दै धतूर को फूल ॥३१॥
खल बचननि की मधुरई चाखि साँप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए कहत मोह गहि मौन ॥३२॥

मुकत-हार हरि कै हियैं मरकत मनिमय होत ।
पुनि पावत रुचि राधिका मुखमुसक्यानि उदोत ॥३३॥
सरद चँद की चाँदिनी को कहियै प्रतिकूल ?
सरद चंद की चाँदिनी कोक हियै प्रतिकूल ॥३४॥

को हरि-वाहन जलधि-सुत को को ज्ञान-जहाज ?
तहा चतुर उत्तर दियौ एक वचन द्विजराज ॥३५॥
स्याम-रूप अभिराम अति सकल विमल गुन-धाम ।
तुम निसि दिन मतिराम की मति विसरौ मति राम ॥३६॥

प्रतिपालक सेवक सकल खलनि दलमलत डाटि ।
शंकर तुम सम साँकरैं सबल साकरै काटि ॥३७॥
सेवक सेवा के सुनें सेवा देव अनेक ।
दीनबंधु हरि जगत है दीनवंधु हर एक ॥३८॥
अधम अजामिल आदि जे हौं तिनको हौं राउ ।
मोहूँ पर कीजै दया कान्ह दया दरियाउ ॥३९॥
अनमिष नैन कहै न कछु समुझै सुनै न कान ।
निरखैं मोर-पखानि कैं भयो पखान समान ॥४०॥

भौंर भाँवरैं भरत हैं कोकिल-कुल मंडरान ।
या रसाल की मंजरी सौरभ सुख सरसान ॥४१॥
तासों ज्ञान बखानि है आप-भलो-इन मित्र ।
बिसरायौ जिहि ज्ञान तें पंकरीक सो चित्र ॥४२॥

निरखि नरनि धर-निकर की अरु बरनत आलोक ।
होत प्रफुल्लित मोक नहि सकल पंकज सोक ॥४३॥

कपट वचन अपराध तैं निपट अधिक दुखदानि।
जरे अङ्ग मैं संकु ज्यौं होत बिथा की खानि ॥४४॥

सरल बान जानै कहा प्रान-हरन की घात।
बंक भयंकर धनुष कौ गुन सिखवत उतपात ॥४५॥

होत जगत मैं सुजन कौं दुरजन रोकनहार।
केतकि कमल गुलाब के कंटक मय परिहार ॥४६॥

फूलति कली गुलाब की सखि यहि रूप लखै न।
मनौ बुलावति मधुप कौ दै चुटकी की सैन ॥४७॥

करौ कोटि अपराध तुम वाके हियै न रोष।
नाह-सनेह-समुद्र मैं बूड़ि जात सब दोष ॥४८॥

कौन भाँति कै बरनियै सुन्दरता नँद-नंद।
तेरे मुख की भीख लै भयौ ज्योतिमय चंद ॥४९॥

दिन मैं सुभग सरोज है निसि मैं सुन्दर इंदु।
द्यौस राति हूं चारु अति तेरो बदन गोविंदु ॥५०॥

रोस न करि जौ तजि चल्यौ जानि अङ्गार गंवार।
छिति-पालनि की माल मैं तैही लाल सिंगार ॥५१॥

देखे हूँ बिन देखि हूँ लगी रहै अति आस।
कैसे हूँ न बुझाति है ज्यौं सपने की प्यास ॥५२॥

तरु ह्वै रह्यौ करार कौ अब करि कहा करार।
उर धरि नंद कुमार कौ चरन कमल सुकुमार ॥५३॥

तनु आगैं कौं चलतु है मन वाही मग लीन।
सलिल सोत मैं ज्यौं चपल चलत चढ़ाऊ मीन ॥५४॥

चयनिका

श्रीगुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोरथ सिद्धि।
घन तैं ज्यौं तरु बेलि दल फूल फलन की वृद्धि ॥१॥
भाव सरस समझत सबै भले लगैं यह भाय।
जैसे अवसर की कही बानी सुनत सुहाय ॥२॥
नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध मैं रस सिंगार न सुहात ॥३॥
फीकी पै नीकी लगै कहिए समय विचारि।
सब कै मन हरषित करै ज्यों विवाह में गारि ॥४॥
जो जाको गुन जानहीं सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहु लेत है काग निबौरी लेत ॥५॥
कहा होय उद्यम किए जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल ॥६॥
जाही तैं कछु पाइयै करियै ताकी आस।
रीते सरवर पै गए कैसे बुझत पियास ॥७॥
जो जाही को है रहै सो तिहिं पूरै आस।
स्वाति बूँद बिनु सघन मैं चातक मरत पियास ॥८॥
गुन ही तऊ मनाइयै जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तऊ आग न आनत कौन ॥९॥
रस अनरस समझै न कछु पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मन्त्र न जानई साँप पिटारे हाथ ॥१०॥
अपनी पहुँच विचारिकै करतब करियै दौर।
तेते पाँव पसारियै जेती लाँबी सौर ॥११॥

ओछे नर को प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घट जाय ॥१२॥
रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है वृक्ष बराबर बेल ॥१३॥
फेर न ह्वै है कपट सों जो कीजै व्यौपार।
जैसें हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥१४॥
नैना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत।
जैसें निरमल आरसी भली बुरी कह देत ॥१५॥
अति परचै तें होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय ॥१६॥
जासों जैसौ भाव सो तैसौ ठानत ताहि।
ससिहि सुधाकर कहत कोउ कहत कलंकी आहि ॥१७॥
सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कों दीपहि देत बुझाय ॥१८॥
अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजै कामरी त्यौं त्यौं भारी होय ॥१९॥
लालच हू ऐसौ भलौ जासौं पूरे आस।
चाटेहु कहुँ ओस के मिटै काहु की प्यास ॥२०॥
जो जेहिं भावै सो भलौ गुन को कछु न विचार।
तज गजमुक्ता भीलनी पहरति गुंजाहार ॥२१॥
एक भले सब कौ भलौ देखौ सबद विवेक।
जैसे सत हरिचन्द के उधरै जीव अनेक ॥२२॥

—वृन्द

कलियाँ थीं धड़ले भये धड़लियाँ भये सुपैदु ।
नानक मता मतो दियाँ उज्जरि गइया खेदु ॥१॥
जागो रे जिन जागना अब जागनि की वारि ।
फेरि कि जाग जागो नानका जब सोवउ पाँव पसारि ॥२॥
मित्राँ दोस्त माल धन छाँड़ि चले अति भाइ ।
संगि न कोई नानका उह हंस अकेला जाइ ॥३॥
हिरदे जिनके हरि बसे से जन कहियहि सूर ।
कही न जाई नानका पूरि रह्या भरपूर ॥४॥
सूरा एकन आँखियन जो लड़नि दलाँ मे जाय ।
सूरे सोई नानका जो मंनणु हुकुम रजाय ॥५॥

—गुरु ना०

❀ ❀ ❀

घीव दूध में रमि रह्या व्यापक सब ही ठौर ।
दादू बकता बहुत हैं मथि काढ़ैं ते और ॥१॥
दादू दीया है भला दिया करो सब कोय ।
घर मे धरा न पाइये जो कर दिया न होय ॥२॥
कहि कहि मेरी जीभ रहि सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुरु बपुरा क्या करै जो चेला मूढ़ अजान ॥३॥
सुख का साथी जगत सब दुख का नाहीं कोइ ।
दुख का साथी साइयाँ दादू सतगुरु होइ ॥४॥
दादू देख दयाल को सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम में रमि रह्यो तू जिनि जानै दूर ॥५॥

—दादू

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहे मलूक जहं संतजन तहाँ रमैया जाय ॥१॥
अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै सब के दाता राम ॥२॥
मलुका सोई पीर है जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ॥३॥
माला जपों न कर जपों जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै मैं पायो बिसराम ॥४॥
दया धर्म हिरदै बसै बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये जिनके नीचे नैन ॥५॥

—मलूकदास

❀ ❀ ❀

वैद्य हमारे राम जी औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब सुमिरण आठौ जाम ॥१॥
सुन्दर संसय को नहीं बड़ो महुच्छव ऐह।
आतम परमातम मिलो रहो कि बिनसो देह ॥२॥
सुन्दर जो गाफिल हुआ तौ वह साँई दूर।
जो बन्दा हाजिर हुआ तौ हाजराँ हजूर ॥३॥
सुन्दर पंछी बिरछ पर लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥४॥
लौन पूतरी उदधि मैं थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये बीचही गई बिलाइ ॥५॥

—सुन्दरदास

'मान' करहु जो करि सकहु कथनी अकथ अपार।
कथे न कछ कछु आवइ करनी करतब सार ॥१॥
कौन भरोसा देह का छोड़हु जतन उपाय।
कागद की जस पूतरी पानि परे घुलि जाय ॥२॥
तब लहु सहिये विरह दुख जब लगि आव सो वार।
दुःख गये तब सुक्ख है जानै सब संसार ॥३॥
सब कहँ अमिरित पाँच है बंगाली कहँ सात।
केला काली पान रस साग माछरी भात ॥४॥
छत्री सुनि जो ना करे तिय अरु गाय जोहारि।
पुहुमी कुल गारि चढ़े सरग होय मुख कारि ॥५॥

—उसमान

❀ ❀ ❀

घर घोड़ा पैदल चलै तीर चलावै बीन।
थाती धरै दमाद घर जग मे भकुवा तीन ॥१॥
विन वैलन खेती करै बिन भैयन के रार।
विन मेहरारू घर करै तीनों निपट लवार ॥२॥
खेती पाती बीनती औ घोड़े की तंग।
अपने हाथ सँवारिये लाख लोग हों संग ॥३॥
जेकर ऊँचा बैठना जेकर खेत निचान।
ओकर बैरी का करै जेकर मीत दिवान ॥४॥
काँटा बुरा करील का औ बदरी का घाम।
सौत बुरी है चून की औ साझे का काम ॥५॥

—घाघ

कल किशलय कोमल कमल पदतल सम नहिं पायँ।
इक सोचत पियरात नित इक सकुचत झरि जायँ ॥१॥
बिलसति यदुपति नखनितति अनुपम द्युति दरशाति।
उडुपति युतउडु अवलि लखि सकुचि सकुचि दुरि जात ॥२॥
सविता-दुहिता श्यामता सुर-सरिता नख-ज्योति।
सुतल - अरुणता भारती चरण त्रिवेणी होति ॥३॥
चारु चरण की आँगुरी मो पै बरणि न जाइ।
कमल कोश की पाँखुरी पेखत जिनहिं लजाइ ॥४॥
पद्मनाभ के नाभि की सुखमा सुठि सरसाय।
निरखि भानुजा धार को भ्रमि-भ्रमि भँवर भुलाय ॥५॥

—रघुराज

❀ ❀ ❀

धनहिं राखिये विपति हित तिय राखिय धन त्यागि।
तजिये गिरधरदास दोउ आतम के हित लागि ॥१॥
लोभ न कबहूँ कीजिये या में बिपति अपार।
लोभी को विश्वास नहीं करे कोउ संसार ॥२॥
लोभ सरिस अवगुन नहीं तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम विद्या सम धन आन ॥३॥
सकल वस्तु संग्रह करै आवै कोउ दिन काम।
वखत परे पर ना मिलै माटी खरचे दाम ॥४॥
कारज करिय विचारिकै कर्म लिखी सो होय।
पाछे उपजै ताप नहिं निन्दा करै न कोय ॥५॥

—गिरधरदास

गिरधर की कुण्डलियाँ

साईं बेटा-बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज बाप-बेटा में बिगरी।
दुस्मन दावागीर हँसे महिमंडल नगरी॥
कह 'गिरधर' कविराय जुगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफा कहु कौने पाई॥१॥

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतो बनै तो करि डारु निपंग॥
तो करि डारु निपंग भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगंदैं खाय चित्त में एक न दीजै॥
कह 'गिरधर' कविराय खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय हरी धन धरती जाकी॥२॥

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारिको ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान जियत जग में जस लीजै।
मीठे बचन सुनाय बिनय सबही की कीजै॥
कह 'गिरधर' कविराय अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसिदिन चारि रहत सबही के दौलत॥३॥

गुन के गाहक सहस नर बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को रंग एक कागा सब भये अपावन॥

कह 'गिरधर' कविराय सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय सहज नर-गाहक गुन के ॥४॥
साईं सब संसार मे मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में तब लग ताको यार॥
तब लग ताको यार यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलै॥
कह 'गिरधर' कविराय जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति यार बिरला कोइ साईं ॥५॥
सांई अवसर के पड़े को न सहे दुख-द्वंद।
जाय बिकाने डोम-घर वै राजा हरिचंद॥
वै राजा हरिचंद करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी-वेष फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह 'गिरधर' कविराय तपै वह भीम रसोई।
को न करै घटि काम परे अवसर के सोई ॥६॥
लाठी मे गुण बहुत हैं सदा राखिये संग।
गहिर नदी नारा जहाँ तहाँ बचावै अंग॥
तहाँ बचावै अंग झपटि कुत्ता कहँ मारै।
दुश्मन दावागीर होयँ तिनहूँ को झारै॥
कह 'गिरधर' कविराय सुनो हो धूर के बाटी।
सब हथियारन छाँड़ि हाथ महँ लीजै लाठी ॥७॥
बिना बिचारे जो करै सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो जग मे होत हँसाय॥

जग में होत हँसाय चित्त मे चैन न पावै।
खान पान सन्मान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह 'गिरधर' कविराय दु.ख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि कियो जो विना विचारे॥८॥

वीती ताहि विसारि दे आगे की सुधि लेइ।
जो वनि आवै सहज में ताही मे चित देइ॥
ताही में चित देइ वात जोई वनि आवै।
दुरजन हँसै न कोइ चित्त मे खता न पावै॥
कह 'गिरधर' कविराय यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि होइ वीती सो वीती॥९॥

साईं अपने चित्त की भूलि न कहिये कोइ।
तव लग मन मे राखिये जव लग कारज होइ॥
जव लग कारज होइ भूलि कवहूँ नहिं कहिये।
दुरजन हँसे न कोय आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह 'गिरधर' कविराय वात चतुरन के ताईं।
करतूती कहि देत आप कहिये नहिं साईं॥१०॥

साईं अपने भ्रात को कवहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिये सदा राखिये पास॥
सदा राखिये पास त्रास कवहूँ नहिं दीजै।
त्रास दियो लंकेश ताहि की गति सुनि लीजै॥
कह 'गिरधर' कविराय राम सों मिलियो जाईं।
पाय विभीषण राज लंकपति वाज्यो साईं॥११॥

कृतघन कबहुँ न मानहीं कोटि करै जो कोय।
सरवस आगे राखिये तऊ न अपनो होय॥
तऊ न अपनो होय भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै फेरि तिहि नहिं पहिचानै॥
कह 'गिरधर' कविराय रहत नितही निर्भय मन्न।
मित्र शत्रु सब एक दाम के लालच कृतघन॥१२॥

❀ ❀ ❀

सरस कविन ये हृदय को बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो समझवार को मौन॥१॥
पिता नीर परसै नहीं दूर रहै रवि यार।
ता अम्बुज में मूढ अलि अरुझि परै अविचार॥२॥
वह वृन्दावन सुखसदन कुञ्ज कदम की छाँहि।
कनकमयी यह द्वारिका ताकी रज सम नाहिं॥३॥
जस जाग्यो सब जगत में भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊँ ततकाले सुधि होय॥४॥
जो मेढ़ा पीछे हटै केहरिया छपकन्त।
जो दुर्जन हँसिकै मिलै तबै बचैयो कन्त॥५॥
दगाबाज की प्रीति यों बोलत ही मुसकात।
जैसे मेहदी पात में लाली लखी न जात॥६॥
निकट रहे आदर घटै दूरि रहे दुख होय।
सम्मन या संसार में प्रीति करौ जनि कोय॥७॥

दरिया सोता सकल जग जानत नाहीं कोय।
जागे में फिर जागना जागा कहिये सोय ॥८॥
बुल्ला चल्ल सुनार दे (जत्थे) गहना गढ़िये लाख।
सूरत आपो आपनी तू इको रूप ये आख ॥६॥
धन जननी धन भूमि धन धन नगरी धन देस।
धन करनी धन सुकुल धन जहाँ साधु परवेस ॥१०॥
भीखा केवल एक है किरतिम भयो अनन्त।
एकै आतम सकल घट यह गति जानहिं सन्त ॥११॥
जो जन जाकी सरन है सरन गहे की लाज।
मीन धार सन्मुख चलै बहे जात गजराज ॥१२॥
पात झरंते इमि कहैं सुन तरवर बन राय।
अब के बिछुरे कब मिलैं दूर परेंगे जाय ॥१३॥
सारँग ने सारँग गह्यो सारँग बोल्यो आय।
जो सारँग सारँग कहै सारँग मुख ते जाय ॥१४॥
पान पुराना घी नया औ कुलवन्ती नारि।
चौथी पीठ तुरङ्ग की सरग निसानी चारि ॥१५॥
—विविध

मुद्रक—नवीन प्रेस, दरियागंज, देहली।